सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों
एवं शिक्षाओं
का
प्रतिपादक
मासिक

संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

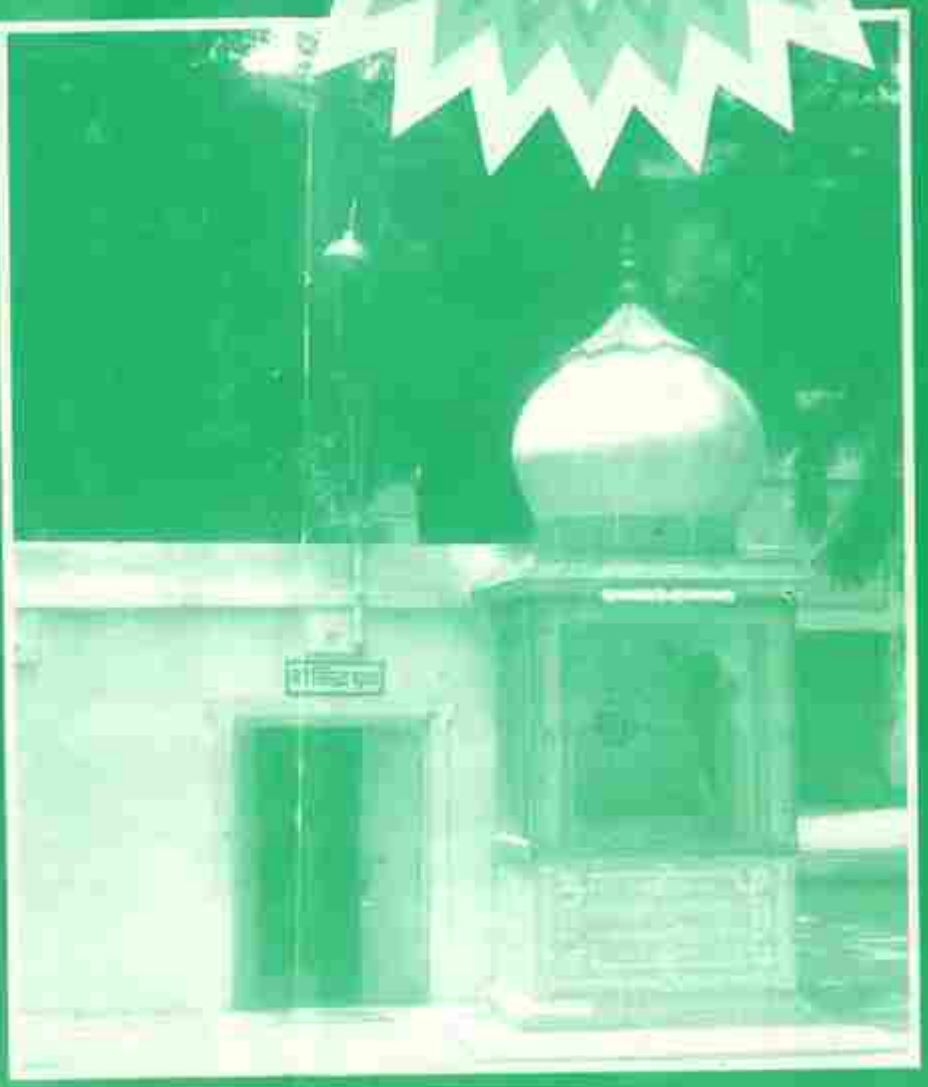

वर्ष : 37; अंक : 2
मई, 2004

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डा. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- प्रयागराज एवं यहाँ की गई साधना का महत्व (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 7
- प्रभुजी चरण कमल धुलवा लो – दिनेश शर्मा 9
- गुरु कृपा ही केवलम् – अंशुमान देव मालवीय 10
- मानस में ईश्वर अवतार कथा – कृष्ण कुमार पाण्डेय 12
- योग की परम्परा 14
- श्री चन्द्र किशोर दूबे पर गुरुवर कृपा – केशव देव उपाध्याय 17
- भाव-प्रसून – श्रीमती सरिता भारद्वाज 22
- जीवनदाता सर्व समर्थ श्री सद्गुरुदेव जी – मोतीलाल 23
- स्वामी रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी 26
- भक्ति ही मृत्यु को सुधारती है – सन्त डोंगरेजी महाराज 32
- सात्विक बनें – शिव शंकर 36
- गायत्री की विशेषता – पं० केशीजी मिश्र 37

एक प्रति	: रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	: रु. 100-00
द्विवार्षिक	: रु. 190-00
आजीवन	: रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 37 अंक 2	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभायम्, मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	मई 2004

योधत्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्रष्टा रजः संश्रयः
संहर्ता तमसान्वितो गुणवर्ती मायामतीत्व स्थितः।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं
नित्यं सत्वसमन्वयाद्धिगतं पूर्णं शिवं धीमहि।।

जो रजोगुण का आश्रय लेकर संसार की सृष्टि करते हैं, सत्वगुण से सम्पन्न हो सातों भुवनों का धारण-पोषण करते हैं, तमोगुण से युक्त हो सबका संहार करते हैं तथा त्रिगुणमयी माया को लाँघकर अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित रहते हैं, उन सत्यानन्द स्वरूप, अनन्त बोधमय, निर्मल एवं पूर्णब्रह्म शिव का हम ध्यान करते हैं। वे ही सृष्टिकाल में ब्रह्मा, पालन के समय विष्णु और संहारकाल में रुद्र नाम धारण करते हैं तथा सदैव सात्विक भाव को अपनाने से ही प्राप्त होते हैं।

अमृतकण

क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडति वस्तुनि।
तथैव विद्वान् रमते निर्ममो निरहं सुखी।।

(विवेक चूड़ामणि/५३८)

जिस प्रकार खिलौना मिलने पर बालक अपनी भूख और शारीरिक व्यथा को भूलकर उससे खेलने में लगा रहता है उसी प्रकार अहंकार और ममता से शून्य होकर विद्वान अपने आत्मा में आनन्दपूर्वक रमण करता रहता है।

❋ ❋ ❋

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो, नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः।
न कस्यचिन्मित्रमधो दुरात्मा, कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः।।

(विदुरनीति ४/१८)

जिसका शासन अत्यन्त कठोर हो, जो अनेक दोषों से दूषित हो कलंकित हो, जो क्रोधवश किसी की बुराई करने से नहीं हटता हो, दूसरों के किए हुए उपकार को नहीं मानता हो, जिसकी किसी के साथ मित्रता नहीं हो, जो दुरात्मा हो—ये अधम पुरुष के भेद हैं।

❋ ❋ ❋

सन्तोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शान्त चेतसाम्।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्।।

चाणक्य नीति

संतोष रूपी अमृत से तृप्त और शांत चित्त वाले मनुष्यों को जो सुख, शान्ति और आनन्द मिलता है वह धन के लोभ से इधर-उधर भागने वाले मनुष्यों को नहीं मिलता।

❋ ❋ ❋

कालार्थ कर्मणां योगो हीन मिथ्याऽतिमात्रकः।
सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम्।।

—अष्टांग हृदय सूत्र

अर्थात् काल, अर्थ और कर्म—इन तीनों का हीन योग, मिथ्या योग और अति योग होना—रोग होने का कारण है। काल, अर्थ और कर्म—इनका सम्यक् योग होना—आरोग्य का कारण है।

प्रयागराज एवं यहाँ की गई साधना का महत्व

योगयोगेश्वर अनन्तश्री विभूषित जी महाराज

देखो ! मैंने तुम्हें पहले भी कई बार समझाया है कि–

यस्मिन् देशे वसेत् योगी ध्यानयोग विचक्षणः।
सोऽपि देशो भवेत् पूतः किं पुनस्तस्य बांधवाः।।

अर्थात् जिस देश में एक ध्यानीयोगी वास करता है वह देश का देश पवित्र हो जाता है। उसके बन्धु–बाँधवों का तो कहना ही क्या। यही कारण है कि भक्तों की कई पीढ़ियाँ तर जाती है। भक्त प्रह्लाद का ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्म–समर्पण था इसी के फलस्वरूप उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर गई। जिस–जिस के प्रति उसके मन में संकल्प आया उस उसका उद्धार हो गया। योगध्यान के विषय में आनन्दकन्द श्रीप्रभुजी यह बात अपने मुखारविन्द से कहा करते थे। मूलाधार कमल के अन्दर जो लोग संयम कर लेते हैं, गुरुदेव की आज्ञा को मानकर उनके बताये विधि के अनुसार जो संयम कर लेते हैं उसका फल निकलता है–'यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोतिनिश्चितम्', उसके मन में जो जो भी कामना आ जाती है वह अवश्य पूरी हो जाती है इसमें कोई शंका की बात नहीं। मेरे कहने का अभिप्राय यह–पहली बात तो यह–यह तीर्थक्षेत्र है, उसमें भी कुम्भ का अवसर है। तीर्थ क्षेत्र तो यह प्रयाग अति प्राचीनकाल से तीर्थक्षेत्र है ही है और फिर यह कुम्भ का मौका भी बारह साल के बाद एक बार आता है। कोई–कोई कुम्भ तो सैकड़ों वर्षों के बाद उस नक्षत्र, उस तिथि एवं उस योग में आता है जो परम कल्याणकारी योग होता है। हमारे पूर्वजों ने जिन सिद्धान्तों का निश्चय किया है वे सिद्धान्त हैं सिद्धान्त उस वस्तु को कहा जाता है–'सिद्धो अन्तः निश्चयो यः स सिद्धान्तः' जो यथार्थ सत्य बात हो उसको सिद्धान्त कहते हैं। वैसे मन कल्पित सिद्धान्त तो राजस तामस भाव वाले जैसे जिस की अन्दर भावना आती है, सिद्धान्तों को वैसे बना लेते हैं। किन्तु यथार्थ में सिद्धान्तों का रचयिता वह हो सकता है जो यथार्थ में योगी है और जिसको ऋतम्भरा प्रज्ञा (प्रकट) प्राप्त हो गई हो। ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ है कि व्यक्ति सत्य संकल्प हो जाये। उसके मन में जो विचार आयें वे सत्य आये उसमें मिथ्यात्व का नामोनिशान भी न हो तो समझ लेना चाहिए कि व्यक्ति सत्य संकल्प हो गया। उसके मन में जो विचार आयें वे सत्य आयें उसमें मिथ्यात्व का नामोनिशान भी न हो तो समझ लेना चाहिए कि वह सिद्धान्तों का निर्माता हो सकता है। हमारे सिद्धान्त हमारे ऋषियों ने बनाये और 'ऋषयो मंत्र द्रष्टारः' ऋषि कहते ही उसको हैं जो मंत्र द्रष्टा हो यथार्थ का ज्ञाता हो। इसलिये जितनी महिमा प्रयाग की पुराणों में लिखी गई है या

कुम्भ पर्व की कही गई है वह सत्य है। कुम्भ की विशेषता यह होती है कि इसमें सभी देवी–देवताओं का वास रहता है और कोई कुम्भ इस प्रकार का नहीं होता जिसमें सिद्धयोगी राज नहीं आते। सिद्ध लोग आते हैं वे गुप्त रूप से रहा करते हैं उनको हर व्यक्ति नहीं पहचान सकता। मनुष्यों की तरह से सामने आकर चले जाया करते हैं। इसलिये, तुम सबके सब इस ब्रह्मक्षेत्र के अन्दर–तीर्थ क्षेत्र के अन्दर रह रहे हो और अबकी बार हम भी यहाँ एक या डेढ़ महिना रहे ही रहे। अब तो एक सप्ताह ही रह पायेंगे। इसके बाद जाना पड़ेगा। आगे के निश्चित कार्यक्रम हैं। किन्तु इतने दिन तक हम तुम सबने यहाँ निवास किया। हमारे कुछ बच्चे आये और चले भी गये। जिस प्रकार का उपदेश और व्याख्यान हम रोज–रोज समझाते आये हैं। उसके अनुसार जिन लोगों ने अपने गुरुमन्त्रों का जाप किया होगा यह निश्चित बात है कि उन्हें सिद्धानुकम्पा प्राप्त हुई होगी। सिद्धलोग देख लेते हैं कौन क्या कर रहा है ? उनकी वह कृपा व सहायता मिल जाती है जिस सहायता के कारण साधक का उत्थान व कल्याण हो जाया करता है। इसलिए प्रथम बात तो यह आनन्दकन्द श्रीप्रभुजी की कृपायें। श्री प्रभुजी सिद्धों के महासिद्ध हैं। इसमें कोई शंका की बात नहीं। मैंने तुम्हें कई बार बताया था कि ऋषिकेश झाड़ियों में रहने वाले केशवानन्द अवधूत अन्तर्द्रष्टा महात्मा थे। उन्होंने मुझसे कहा था–'ये लोग तो हिमालय को छोड़ते ही नहीं। इतने बड़े महापुरुष पृथ्वी पर आये तो कैसे आये ? यह केशवानन्द की वाणी थी। आज प्रातःकाल कुछ लोग मेरे पास आये थे नन्दगांव बरसाने के रहने वाले थे। मैंने उनसे थोड़ा सा जिक्र बरसाने के किशोरीदास भण्डारी का किया था। वे लोग भी उनकी प्रसिद्धि से परिचित थे कि किशोरीदास भण्डारी निम्बार्क सम्प्रदाय के महात्मा थे। मेरे वृन्दावन वास के समय में एक बार एक प्रकरण चल पड़ा था जिस प्रकरण के अनुसार उन्होंने ध्यान में श्रीप्रभुजी के दर्शन प्राप्त किये और प्रभुजी के तेज को देखकर उठने के बाद कहने लगे। 'अरे भाई वाह ! वाह ! वे तो परब्रह्म हैं, पुरुषोत्तम हैं, परात्पर हैं, तुम्हारे तो बहुत बड़े भाग्य हैं जो ऐसे गुरुदेव की प्राप्ति हुई'। इसलिए हम लोगों के लिये सबसे बड़ी बात तो यह–श्री प्रभुजी के चरण–कमलों का मिलना, दूसरी बात श्री प्रभुजी का स्वरूप तुम्हारे सामने, तीसरी बात यदि तुमने नियम से अपने गुरू–मंत्रों का जाप किया होगा तो प्रभुजी की कृपा, सिद्धों की कृपा, देवताओं की कृपा व इस क्षेत्र के अन्दर रहने का लाभ अवश्य मिलेगा और वह कल्याण मार्ग पर बढ़ता चला जायेगा। अब चार छः दिन बाद तुम लोग भी चले जाओगे। हम भी चले जायेंगे। उसके बाद अन्य–अन्य कार्य जैसे प्रभुजी की आज्ञा है वैसे–वैसे करेंगे। इतने दिन तुम लोग अपने गुरूमंत्रों का खूब जाप करो। प्रातःकाल गीता पाठ हो जाने के बाद कम से कम एक घण्टा अपने शरीर को सीधा रखकर यहाँ दरबार में बैठकर ध्यानाभ्यास किया करो। इसके बाद नाश्ता आदि किया करेंगे। एक सप्ताह तक तुम लोग इसी नियम में चलो। आज प्रशासन पंडाल में ब्रह्मचारी प्रमुदत्त जी भी मिले थे। वे मेरे बचपन के साथी हैं। एक तरह से मेरे बड़े भाई ही हैं। मुझे आज दोपहर दो बजे बाद उनके आश्रम में भी जाना है जो लोग वहाँ

जाना चाहें खुशी से जा सकते हैं। अस्तु ! इसलिए तुम लोग जाप एवं ध्यान साधना को निरन्तर बढ़ाओ। मैंने कल–परसों के अपने व्याख्यान में तुम्हें रघुनन्दन प्रसाद की तपस्या, स्वाध्याय एवं नियमानुवर्तिता का जिक्र किया था। ध्यानयोग के फलस्वरूप उसमें सिद्धियाँ एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो गया था। इसी प्रकार से हमारा बच्चा संसार सिंह जम्मू का रहने वाला था। उसको भी हमने प्राणायाम कराया था। प्राणायाम एवं ध्यान के फलस्वरूप उसमें भी दिव्यशक्तियों का उदय हो गया था। इसी प्रकार से हमारा बच्चा अशोक, खुशीराम आदि जिन–जिन का नाम मैं लेता रहता हूँ उन्होंने अपने जीवन के अन्दर सतोगुण बढ़ाया और प्रकाशमय शरीर को बना लिया और कहकर क्षणभर में अपने शरीर को छोड़ दिया। उनको तड़फना नहीं पड़ा, दुःख भोगने नहीं पड़े। इस प्रकार के लोग यदि थोड़ी बहुत वासना मन के अन्दर है तो स्वर्गीय बन जाते हैं। अन्यथा उत्तम कुल में जन्म लेकर फिर योगाभ्यास करके पूर्णयोगसिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। यदि तुम लोग जन्म–मृत्यु से बचना चाहते हो तो दो घण्टे प्रातःकाल ५ से ७ बजे तक अपने गुरूमंत्र का जाप करो जो श्वास प्रश्वास से जाप करते हैं वे करें अन्यथा जीभ से जपते रहें। यूँ मेरूदण्ड को सीधा रखकर जपें। यदि सीधे बैठोगे तो सुषुम्ना चलेगी। सुषुम्ना में भी ब्रह्मनाड़ी चलेगी। सुषुम्ना के अन्दर ब्रह्मनाड़ी, व्रजा और चित्रिणी तीन नाड़ियों का प्रवाह चलता है। चित्रिणी में तो दृश्य दिखाई देते हैं। व्रजा में जड़ता आ जाती है। ब्रह्मनाड़ी समाधि की जनक हो जाया करती है। सीधे बैठने से नींद भी नहीं आयेगी यदि आलस्य आने लगे तो खड़े होकर मंत्र को जपो। मंत्र जाप करके फिर एक घंटा ध्यान किया करो। इसी प्रकार रात को सोते समय जिस इष्टदेव का ध्यान बतलाया है, जो मंत्र बतलाया गया है उसका जाप करते–करते व ध्यान करते–करते सो जाओ तो इसका दर्शन बतलाता है– **'स्वप्ननिद्राज्ञानावलम्बनम् वा'** स्वप्न एवं निद्राज्ञान से भी मन की एकाग्रता बनती है। स्वप्नज्ञान का अवलम्ब लेकर–आँखें बन्द करके यूँ स्वप्न जैसा देखना आरम्भ कर दे। मैं कैलाशपर्वत पर पहुँच गया हूँ वहाँ भगवान शंकर बैठे हुये हैं। सिद्ध लोग उनकी स्तुति कर रहे हैं। नन्दीगण एक तरफ बैठे हुये हैं। इस प्रकार से एक स्वप्न सा ले लिया। इसी प्रकार से अपने इष्टदेव के चरित्रों का चिन्तन करते हुये यदि सीधे लेटकर ध्यान लगाते हैं और सो जाते हो तो सारी रात वह ध्यान लगा रहेगा–फिर–"सोना तो सबसे भला, जो कोई जाने सोय," की बात चरितार्थ हो जायेगी।

मैंने अपने कल–परसों के व्याख्यान में परिणाम ताप संस्कार एवं गुणवृत्ति विरोध का वर्णन कर दिया था और विस्तार से दुःखों के निवारण का उपाय भी बतला दिया था। उपनिषदों में पहला उपनिषद् है **ईशावास्योपनिषद्**। इस उपनिषद् का पहला मंत्र है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचजगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन मुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

इसका अर्थ यह है–इदं सर्वं ईशावास्यम्। यह सारा संसार परमात्मा के रहने की जगह है।

परमात्मा हर घट के कण-कण में विद्यमान है-ओत-प्रोत है। जो भी संसार के अन्दर दिखाई देता है ये सब ईशावास्य है। उसमें एक खास उपदेश की बात यह बतलाई गई-'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' इसलिये त्याग भाव से वस्तुओं का उपयोग करो। किसी के सत्व पर अपना अधिकार मत करो। कहने का अभिप्राय यह हमारे लिये जो-जो भी सम्पत्तियाँ हैं, जो महल बंगले हैं, जो धन दौलत है, जो स्त्री-पुत्र है, जो भी हमारे सम्पर्क की वस्तुयें हैं ये सबके सब ईशावास्य से युक्त हैं। उन सबके अन्दर परमात्मा का निवास है। यथार्थ में वे हमारे नहीं हैं ये उस परमात्मा की सत्ता है। वह परमात्मा किस-किस रूप में, किस-किस शक्ल से हमारे मन को अपनी ओर खींचती है यह एक न्यारी सी बात हो जाती है। बस ! इसमें एक ही बात समझ लेनी चाहिए 'इदं सर्वं ईशावास्यम्' इस संसार में जो भी है वह परमात्मा से ओत-प्रोत है इसलिए मनुष्य को किसी सत्व (प्राणी) पर अपनी आसक्ति पैदा नहीं करनी चाहिये। यह मेरा है-यदि हम इस बंधन में पड़े रहते हैं तो संस्कार बनते रहते हैं। बिगड़ते रहते हैं। मनुष्य जन्म और मरण के चक्र से छूट नहीं पाता। एक बार लाहौर में हमारे बड़े गुरुभाई मुल्खराज जी महाराज बैठे हुए थे। वहाँ पर उनके सामने एक महात्मा आये। थोड़ी देर दो तीन मिनट तक उन्होंने बात की और फिर कहा भाई ! अब तो तुम्हें परब्रह्म मिले हुये हैं उनके चरणारविन्द से तुम्हारा कल्याण होगा ही होगा। मेरा तुम्हारा तो इतना ही संस्कार था मैंने तीन मिनट तुमसे बात करनी थी सो कर ली अब हमारा तुम्हारा कोई संस्कार नहीं है। इसलिए अब मैं जाता हूँ। तुम अपना काम करो। उसके बाद ये महात्मा बिल्कुल नहीं मिले। एक बार हम अमृतसर में थे। हमारे पास एक लड़का आया। श्रीप्रभुजी के चित्र को देखकर बड़ा ही आकर्षित हुआ। और उसी समय से उसको प्रभुजी के दर्शन होने लगे। मैं उस समय ध्यानाभ्यास किया करता था। ध्यान में श्रीप्रभुजी अपने मुखारविन्द से कहते है-इसका संस्कार दशरथ के समय से चला जा रहा है। दशरथ का समय जिस समय भगवान राम ने अवतार लिया था तब से इसका संस्कार चला आता है। इसलिये ऐसा हुआ। दूसरे दिन ये सब बातें मैंने श्रीप्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर बताई। इस पर श्री प्रभुजी ने कहा-उस को हमारे पास बिल्कुल मत लाना। श्रीमुल्खराजजी कहने लगे-इतना बड़ा संस्कारी है, उसको अवश्य ले आना चाहिए। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया। राजे ! तू इस बात को नहीं जानता कि संस्कार संस्कार का जनक होता है। अस्तु !

इसलिये दुःख द्वन्द्वों से छूटने के लिये तुम सब ध्यानयोग का अभ्यास करो। बस ! खास बात यही है अपने जीवन के अन्दर सतोगुण को बनाना हो तो फिर कोई भय नहीं रहेगा। नहीं तो, दुर्लभो मानुषो देहः-मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। यदि साधना करते रहोगे तो जब तक मुक्ति नहीं मिलती तब तक नरदेह मिलती रहेगी। कल्याण का साधन मिलता रहेगा और अन्त में परमपद को अवश्य ही पा जाओगे। बस ! बार-बार सभी को आशीर्वाद।

❖❖❖

जीव का परम कल्याण

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

परमात्मा के सृष्टि विधान के अनुसार जीव को अपने संस्कार एवं कर्म के अनुसार चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना पड़ता है। शुभ कर्मों के उदय होने पर जीव को मनुष्य का जन्म मिलता है। यह बात अलग है कि मनुष्य जन्म पाकर भी क्लिष्ट संस्कारों के प्रभाव से उसे कष्टमय घोर जीवन यापन करना पड़ जाये। 'दुर्लभो मानुषो जन्म' के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य का जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य जन्म प्राप्त कर लेने के पश्चात मनुष्य प्राक्तन संस्कारों के वशीभूत कर्म में प्रवृत्त होता है। मनुष्य संसार में लोगों के विषय में सुनकर उनमें से भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म एवं साधना में प्रवृत होता है। इन कार्यों एवं साधनाओं का अपना नियत लक्ष्य एवं फल रहा करता है। इस विषयों में श्रुतियों में आया है—

यक्षैर्देवत्वमाप्नोति
तपोभिर्ब्रह्मणा पदम्।
दानेन विविधान्भोगान्
ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्।

अर्थात् मनुष्य नाना प्रकार के यज्ञों से देवत्व प्राप्त करता है। तपस्या से ब्रह्मलोक पाता है। दान से तरह-तरह के भोग प्राप्त करता है। और ज्ञान से मोक्षपद पाता है।

धर्म की रज्जु से पुरुष ऊपर की ओर जाता है और पाप रज्जु से अधोगति को प्राप्त होता है। परन्तु जो इन दोनों को ज्ञानरूप खड्ग से काट देता है वह देहाभिमान से रहित होकर परम शान्ति को प्राप्त करता है। चित्त शुद्धि के बिना ज्ञान का उदय नहीं हो सकता। चित्त शुद्धि का एक मात्र उपाय योग है। जिस प्रकार से सोना, चांदी, लोहा आदि धातुओं पर पड़े मल को अग्नि आदि पर तपाकर दूर कर दिया जाता है इसी प्रकार से क्रियायोग व योग साधनों से चित्त, शरीर एवं मन का मल दूर किया जाता है। इस मल को दूर करने का उपाय स्वाध्याय है—मन्त्रजाप एवं मुक्ति दायक ग्रन्थों का अध्ययन स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय का फल योगदर्शन में इष्टदेव का दर्शन बताया गया है। स्वाध्याय के फलस्वरूप ऋषि, मुनि और सिद्धपुरुष स्वाध्यायशील व्यक्ति के सम्मुख आया करते हैं और उसके मनोवांछित कार्य कर दिया

करते हैं। बिना स्वाध्याय–साधना के सिद्ध पुरुषों के दर्शन नहीं हुआ करते हैं। गुरुदेव भगवान् इस सम्बन्ध में एक घटना सुनाया करते थे–

सिद्धदर्शन का एक जिज्ञासु हिमालय की ओर गया। कई दिनों के अथक प्रयत्न के बाद उन्हें एक ब्रह्मचारी मिले। तुम यहाँ क्यों आये हो ? उसने कहा–मैं यहाँ सिद्धों के दर्शन करने आया हूँ।" मैं इधर ही रहना चाहता हूँ। उस ब्रह्मचारी ने कहा–तुमने कितना स्वाध्याय किया है ? क्या उपनिषदों का अध्ययन किया है ? उन्होंने कहा–नहीं, मैंने उपनिषदों का अध्ययन तो नहीं किया है। ब्रह्मचारी ने कहा–पहले तुम उपनिषदों का अध्ययन करो। मन्त्र का जाप करो। फिर इधर आना। इस क्षेत्र में अन्न खाने वाला तथा मल मूत्र का त्याग करने वाला व्यक्ति नहीं रह सकता। तुम पहले स्वाध्याय करके अन्तःकरण को निर्मल करो। इसके परिणाम स्वरूप सिद्ध पुरुष तुम्हें दर्शन देंगे और इस क्षेत्र में रहने की आज्ञा देंगे। सिद्धों की इच्छा के बिना यहाँ कोई भी नहीं रह सकता। वह व्यक्ति किसी गुरुकुल में जाकर उपनिषदों का अध्ययन करने लगा। सिद्धों के आशीर्वाद के फलस्वरूप एक ही बार पढ़ाने पर उसे सब याद हो जाता था। अस्तु।

स्वाध्याय जन्य पुण्य के फलस्वरूप सिद्ध पुरुषों का दर्शन हाता है तथा उनकी संगति मिलती है। फिर सिद्धकृपा से साधक योगी बन जाता है। और योगी अपनी साधना एवं ज्ञान से संसार सागर से पार हो जाया करता है।

सिद्धदर्शन अथवा इष्ट दर्शन के विषय में गोपीनाथ कविराज जी अपने ग्रन्थों में इस बात को स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि जब तक साधक के परमाणु दिव्य होकर इष्ट के परमाणु के तुल्य नहीं हो जाते जब तक इष्ट का दर्शन नहीं हुआ करता है।" परमाणु को उज्ज्वल बनाने का उपाय स्वाध्याय है। मुक्तिदायक ग्रन्थों का मनन एवं मन्त्रजाप निश्चित ही साधक को दिव्य बना देते हैं।

साधक का लक्ष्य आत्मदर्शन ही होना चाहिये और यह लक्ष्य योग से ही प्राप्तव्य है। योग से ही अन्तर्दृष्टि मिलती है। तभी साधक सूक्ष्म जगत का ज्ञाता बनता है। उपनिषदों का उद्घोष है–

'यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति सैषा योग विद्या'

अर्थात् जिस विद्या से संसार की सारी विधायें हस्तगत हो जाती है वह विद्या योग ही है। योग की पराकाष्ठाको प्राप्त करना ही योगी का लक्ष्य रहता है। आत्मदर्शन या परमात्म दर्शन ही वस्तुतः परम पुरुषार्थ है और यही परम कल्याण है।

* * *

प्रभुजी चरण कमल धुलवा लो !

दिनेश शर्मा जरेरा, दिल्ली

प्रभुजी चरण कमल धुलवालो गुरुजी चरण कमल धुलवा लो। टेक

बड़े भाग्य से अवसर आया, दीन दुःखी पर नेह दिखाया।
करुणा सागर मान बढ़ाया, अच्छा अवसर हाथ लगाया।।
निज हाथन मम शीश लगा दो, प्रभु जी चरण कमल धुलवा लो, गुरुजी चरण....

असुअन वारि सजाकर लाया, नयन कटोरे में भर लाया।
पल-पल रोकूँ रोक न पाया, झर झर प्रेम सँवार न पाया।।
भीगी पलकों से धुलवा लो, प्रभुजी चरण कमल धुलवा लो, गुरुजी चरण.....

हृदय थाल में दीपक लाया, प्रेम की वाती भी रख लाया।
योग रूप का घी भरवाया, गुरु नाम ले दीप जलाया।।
मन के अंधकार मिटवा दो, प्रभुजी चरण कमल धुलवा लो, गुरुजी चरण.....

श्रद्धा सुमन इकट्ठा करके, बड़े यतन से संचित करके।
कण कण मन का पुलकित करके, सिहर सिहर मन हरषित करके।
मन के हाथों से धुलवा लो, प्रभुजी जी चरण कमल धुलवा लो, गुरुजी चरण.....

दौड़ कर जोर खड़ा मैं स्वामी, अंतर गति के अंतर यामी।
काम, क्रोध, खल, लोभ मैं वामी, बड़े अहम् मन चंचल यामी।।
मुझ पर अपनी दृष्टि जमा दो, प्रभुजी चरण कमल धुलवा लो, गुरुजी चरण.....

गुरु कृपा ही केवलम्

अंशुमान देव मालवीय (वाराणसी)

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परम करुणा निकेतन महाप्रभु श्री सद्गुरु देव जी महाराज के कृपा से अनेकों ने अपने जीवन को गौरवशाली एवं महान बनाया परन्तु जिसने गुरु देव महाराज को जाना और इनके बताये सन्मार्ग पर चला वही अपने जीवन को गौरवशाली एवं महान बना पाया।

मनुष्य आज भौतिकवाद में इतना लिप्त हो चुका है कि वह अपने जीवन के महत्व को ध्यान नहीं दे रहा है जिसका नतीजा उसे उसके जीवन के अन्त काल में मिलता है और वह चौरासी लाख योनि में भटकता ही रह जाता है। मनुष्य का जन्म हमें बड़े ही भाग्य एवं पुण्यों के संचय से मिलता है परन्तु आज इस घोर कलियुग में मनुष्य की बुद्धि भ्रमित हो गयी है। वह परोपकार एवं धर्म को छोड़कर विषय को विशेष महत्व दे रहा है उसे यह नहीं समझ आ पा रहा है कि वह अपने इस जीवन को सार्थक कैसे बनाये वह कौन सा कर्म करें जिससे उसके सम्पूर्ण जीवन का सदुपयोग हो सके और वह इस आवगमन से छुटकारा पा सके।

आज मनुष्य अपने लोभ में (अपने लाभ) में दूसरों की समस्याओं को अनदेखी करके अपने लिये ही सोचता है परन्तु वह अपने इस मानसिकता से कुछ समय तक ही लाभ ले पाता है। क्योंकि वह सिर्फ अपने भौतिक सुखों की कामना करता है और परलौकिक सुखों की बात को तो वह सोच भी नहीं पाता। क्योंकि परलौकिक बातें उसके बुद्धि के परे है। और यह बातें उससे परे इसलिये है क्योंकि उसके पास अज्ञानता है। और यह अज्ञानता तभी दूर हो पायेगी जब मनुष्य गुरु के चरणों में जाय और पूर्ण रूप से समर्पण भाव से जाय तभी उसको ज्ञान प्राप्त होगा और उसके जीवन का सदुपयोग हो पायेगा। और उसका जीवन सार्थक हो पायेगा। गुरु शब्द ही सम्पूर्ण ज्ञान है। क्योंकि 'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार और 'रु' शब्द का अर्थ है निरोधक अन्धकार का निरोध करने वाले ही गुरु हैं। गुरु के शरण में जाने से अज्ञान नष्ट हो जाता है और मनुष्य के सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है। उसके जीवन में सुख-दुःख नहीं रह जाता है दूसरों के दुःखों को वह अपना दुःख समझता है। और दूसरों के सुखों को वह अपना सुख समझता है। ज्ञान पा जाने के बाद मनुष्य के अन्दर ये विशेषताएँ आना स्वाभाविक है क्योंकि उसके ऊपर गुरु की कृपा हो जाती है।

गुरु के बिना ज्ञान संभव नहीं है क्योंकि गुरु ही मनुष्य को ज्ञान के अथाह सागर में स्नान कराते हैं। और इनके प्रत्येक शब्द को आज्ञा मानकर जो चलता है वह एक असाधारण योगी बनता है। और एक सफल योगी मनुष्य तभी बन सकता है जब वह अपने गुरु के बताये सन्मार्ग पर चले और यौगिक क्रियाओं में अपना समय ज्यादा दे सके। परन्तु आज मनुष्य विषय में इतना लिप्त हो चुका है कि वह अपने जीवन के दायित्वों को भी भूल गया है।

मनुष्य आज अपने अहंकार में एवं विषय में इतना लिप्त है कि वह यह भूल गया है कि मनुष्य जीवन हमें कुछ ही समय के लिये मिला है और अगर हमने इस जीवन को साधारण तरह की वस्तुओं में बिता दिया तो हमारा जीवन मिलना न मिलना बराबर हो जायेगा। आज कुछ लोग अपने निजी स्वार्थों के चलते किसी के भी हितों को ध्यान न देकर अपने स्वार्थों को ज्यादा अहमियत देते हैं ऐसे लोग भौतिक सुखों को जुटाने में अपना पूरा जीवन लगा देते हैं। भौतिक सुख को ही यह अपना लक्ष्य बना लेते हैं। परन्तु वास्तविक लक्ष्य की ओर उनका ध्यान नहीं जाता है, जो कि उनके दुःखों के कारण बनते हैं। और इसका कारण उनका स्वयं का अज्ञान है। अज्ञान यह अन्धकार है जो मनुष्य को प्रकाश से अन्धकार की ओर ले जाता है और ज्ञान यह प्रकाश है जो मनुष्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। ज्ञान व अज्ञान में फर्क यह है कि 'ज्ञान' हमें अपने मूल लक्ष्य की ओर ले जाता है। जहाँ हमें असीम शांति की प्राप्ति होती है। और 'अज्ञान' हमें पथ भ्रष्ट कर मनुष्य को उस स्थान पर खड़ा कर देता है जहाँ उसका विनाश शुरू हो जाता है।

एक सफल साधक के लिये ज्ञान ही सहायक है और ज्ञान का प्रकाश मनुष्य को सद्गुरु ही दिया करते हैं। इसलिये हमें एक सफल साधक बनने के लिये समय रहते अपने इस जीवन का सदुपयोग करना होगा ताकि हम अपने इस जीवन को सार्थक बना सकें।

आप सभी सुयोग्य पाठकों से मेरा यह सविनय निवेदन है कि लेख की त्रुटि को ध्यान में न रखकर सद्गुरु देव भगवान को ही एकमात्र सहायक मानकर इन्हीं की आरती पूजन एवं कृपा चरित्र का वर्णन सदैव करें जिससे सभी का लाभ हो सके।

"जय गुरुदेव"

❋ ❋ ❋

प्रभुजी का यह पावन धाम

मेरे मन में बसा सवाई धाम
महा प्रभु ने गुफा बनाकर कुछ दिन किया जहाँ विश्राम
गुरुदेव की कर्म भूमि जो रहते वहाँ पर आठों याम
सिद्धों के महासिद्ध प्रभु जी योगेश्वर प्रभु राम
झिलमिल झिलमिल तेज व्याप्त है करके देखो ध्यान
मन वांछित फल मिले उसी को श्रद्धा से जो करता ध्यान
राग द्वेष अहंकार छोड़कर मन को करले श्रद्धावान
तीन लोक में सब से न्यारा प्रभुजी का यह पावन धाम

मानस में ईश्वर अवतार कथा

कृष्ण कुमार पाण्डेय (गोरखपुर)

एक बार की बात है कि भगवान आशुतोष एवं जगत जननी पार्वती जी कैलाश में बैठे सतसंग कर रहे थे। पार्वती ने पूछा—हे नाथ आपके इष्ट भगवान राम ब्रह्म के रूप में सबके अन्तःकरण में अविनाश रूप में निवास करते हैं। उनके अवतार की कथा को श्रवण करने की इच्छा है। भूतभावन भोले नाथ पार्वती के शुद्ध अन्तःकरण को जानकर तथा जिज्ञासु जानकर भगवान के चरित्र को सुनाने के लिए तैयार हो गये। भगवान बोले—हे देवी भगवान के सुन्दर विस्तृत और निर्मल चरित्रों का गान वेदों एवं शास्त्रों में किया गया है। हरि का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण है—

"इदमित्थं कहि जाइ न सोई"

अर्थात् हरि के अनेकों कारण हो सकते हैं। उसमें कुछ ऐसे भी होते हैं, जिसको लोग नहीं जान पाते हैं। हे देवी हमारे मत से तो भगवान श्री राम की तर्कना मन, वाणी और बुद्धि से नहीं की जा सकती है। यद्यपि वेद, पुराण, संत एवं मुनि आदि अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ कहा है। उसको तुम्हें सुनाता हूँ। हे देवी—जब–जब धर्म की हानि और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं तथा वे गौ, ब्राह्मण, देवता, पृथ्वी एवं पृथ्वी पर रहने वालों को कष्ट देते हैं। तब वे कृपा निधान सबके कष्टों को दूर करने के लिए भिन्न–भिन्न दिव्य शरीर धारण करते हैं।

असुर मारि थापदि सुरन्ह राखहि निजश्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं विसद जस राम जनम कर हेतु।।

अर्थात् वे भगवान असुरों को मारकर देवताओं को स्थापित करते हैं। वे अपने (श्वासरूपी) वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं यही अवतार का मुख्य प्रयोजन होता है। भगवान के सुन्दर यश रूपी कार्यों को गा–गाकर भक्तजन भवसागर से तर जाते हैं। वे कृपा सागर भगवान भक्तों के हित के लिए ही शरीर धारण करते हैं। वैसे भगवान के अवतार के अनेकों कारण हैं, जो एक से बढ़कर एक हैं वे कृपा सागर रावण, कुम्भकर्ण, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु आदि का उद्धार करने हेतु भी अवतरित हुए हैं। ईश्वर के अवतार की एक कथा असुर राज जालंधर के उद्धार का कारण बना। जालंधर एक महाबली दैत्य था। उससे युद्ध में सभी देवता परास्त हो गये, कथा कहते हुए भोले नाथ ने कहा कि देवी वहाँ हमें भी परास्त होना पड़ा। उस असुर को जीतना कठिन इसलिए हो गया कि उसकी स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। उसी के पतिव्रत्य के कारण उसे मार पाना आसान न था। भगवान से उसके अत्याचार को सहा नहीं गया। भक्तों की रक्षा हेतु भगवान ने छल से उस स्त्री का व्रत भंग कर देवताओं का कार्य सिद्ध किया। उसी सती के कारण भगवान को उसके श्राप को ग्रहण करना पड़ा। किन्तु ईश्वर के लिए श्राप भी उसी के

कल्याण का कारण बना। उस सती के श्राप को धारण कर दूसरे जन्म में उसके पति का उद्धार किया।

एक कारण नारद के हेतु बना–

नारद श्राप दीन्ह एक बारा कलप एक तेहि लगि अवतारा।।
गिरजा चकित भई सुनि बानी।
नारद विष्णु भगत पुनि ज्ञानी।।

नारद के श्राप की बात को सुनकर पार्वती ने पूछा–हे देवाधिदेव ! मुनि ने भगवान को किस कारण से श्राप दिया। लक्ष्मीपति से कौन सा ऐसा अपराध नारद के प्रति हो गया था। तब भूत भावन हंसकर बोले–

बोले बिहसि महेस तब, ज्ञानी मूद न कोई।
जेहि जस रघुपति करहि जब सो तस तेहि छन होई।।

अर्थात् हे देवी–इस संसार में न कोई ज्ञानी है न मूर्ख क्योंकि भगवान श्री रघुनाथ जब जिसको जैसा करते हैं। वह उसी क्षण वैसा ही उन्हीं की प्रेरणा से करने लगता है। क्योंकि जीव उसी के माया के आधीन होकर विवशता वश उस कार्य को करता है। तुलसीदास जी ने कहा–"भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद"। अर्थात् मान व मद को छोड़कर आवागमन का नाश करने वाले रघुनाथ जी को भजना ही श्रेयस्कर है।

भगवान के अवतार के प्रयोजनों से ये साधु पुरुषों की रक्षा तथा असाधु पुरुषों के नाश का भी मुख्य कारण है। गीता में योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि–"परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्"। साधु पुरुषों (सज्जनों) का उद्धार करने के लिए, पाप कर्म करने वालों का विनाश करने के लिए तथा धर्म की स्थापना ही अवतार का प्रमुख प्रयोजन होता है। वह परम पुरुष करुणा करके जगत के लोगों के कल्याण के लिए, अपने विभिन्न रूपों को धारण कर अदृश्य रूप से कार्य करते रहते हैं। लेकिन सामान्य संसारी जन इसको जल्दी समझते नहीं है। वैसे भी वे करुणा के सागर अपने कृत्यों का आभास होने नहीं देते हैं। जैसे माँ यशोदा कृष्ण के साथ रहकर भी परम तत्व का ज्ञान नहीं कर पाती थी। प्रभु ऐसे जीवों पर माया का आवरण डालते रहते हैं। हम सबके परम पूज्य सद्गुरुदेव भगवान अपने प्रवचनों में कहा करते थे कि योगी साधक को योग लाइट देकर पीठ पीछे कर लेता है। तात्पर्य यह कि बीज का वपन हो जाने पर साधक शनैः शनैः साधना क्षेत्र में बढ़ता रहे।

ईश्वर के अवतार का प्रत्येक युग में विशेष प्रयोजन होता है। इस प्रयोजन की सिद्धि हेतु वह परम कृपालु किसी व्यक्ति को आधार बनाकर जगत का कार्य सिद्ध करते हैं। इसलिए उस करुणा के सागर के प्रति कृतज्ञ होना हमारा धर्म होना चाहिए।

* * *

योग की परम्परा

'अथयोगानुशासनम्'। शासन का अर्थ शिक्षा है और अनु का तात्पर्य है कि जो शिक्षा अनादिकाल से चली आ रही है, उसी योग की परम्परागत शिक्षा का वर्णन भगवान पतंजलि देव ने अपने योग दर्शन में किया है। यह योगविद्या सारे सम्प्रदायों और मतमतान्तरों के पक्षपात और वाद-विवाद रहित सार्वभौम धर्म है, जो तत्त्व का ज्ञान स्वयं अनुभव द्वारा प्राप्त करना सिखलाता है और मनुष्य को उसके अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचाता है।

योग की प्राचीनता के विषय में विभिन्न ग्रन्थों द्वारा पुष्टि की गई है।

"हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य पुरातन"

(याज्ञवल्क्य)

सांख्यस्य वक्ता कपिल परमर्षिः उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य पुरातनः।"

(महाभारत)

अव्यक्त एवं अलिंग मूल प्रकृति के तीनों गुणों सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण में ब्रह्म के ईक्षण के कारण जब क्षोभ उत्पन्न हुआ तब लिंग रूप से सृष्टि के आदि पुरुष ज्योतिमान स्वरूप के साथ भगवान हिरण्यगर्भ प्रगट हुए, जो समस्त भूतों के एकमात्र पति थे।

"हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्।।"

(ऋग्वेद मंडल १०)

भगवान हिरण्यगर्भ ने इस पृथ्वी और द्युलोक को धारण किया। वे ही योग के प्रथम वक्ता थे। उन्होंने इस योग का उपदेश कल्प के आदि में अपनी प्रजा को आज से १, ९५, ५८, ८५, १०५ वर्षों पूर्व दिया था।

"सहयज्ञाः प्रजाः सृष्टा पुरोवाच प्रजापतिः"। गीता ३/१०

कालान्तर में यह योग ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्मयोग, हठयोग, लययोग और अष्टांग योग में विभक्त होकर इस संसार में प्रचलित हो गया।

ज्ञान योग में बुद्धि की प्रधानता से विचार को प्रमुख माना है। ज्ञानयोगी विचार प्रधान होने से शरीर के अन्नमय आदि कोषों को निषेध करते हुए, शरीर, मन, इन्द्रियों आदि से सम्बन्ध विच्छेद करके लक्ष्य को प्राप्त करता है।

कर्मयोगी की मान्यता है कि यह शरीर संसार और प्रकृति से प्राप्त हुआ है। इसलिये वह संसार की निष्काम भाव से सेवा करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

भक्तयोगी अपने आपको पूर्णरूप से भगवान के समर्पण करके यह मानता है कि मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं। इसी भावना के द्वारा वह अपना उद्धार करता है।

हठयोगी अपने प्राणों पर नियन्त्रण करके अपने अन्तःकरण की शुद्धि करके इन्द्रियों को अपने वश में करके प्राणायाम के द्वारा अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

संसार के लय चिंतन के द्वारा जो साधना की जाती है वह लय योग कहलाता है।

अष्टांग योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि द्वारा योगी कैवल्य पद को प्राप्त करता है।

अष्टांग योग को छोड़कर उपरोक्त सभी योग एकांगी है। इस कल्प में वर्तमान में वैवस्वत मनु का काल चल रहा है। इससे पूर्व १ स्वायम्भुव मनु २ स्वारोचिष मनु ३ औत्तम मनु ४ तामस मनु ५ रैवत मनु ६ और चाक्षुष मनु के काल व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमान सातवें मनु की २७ चतुर्युगी व्यतीत हो चुकी हैं। अट्ठाइसवीं चतुर्युगी के तीन युग अर्थात् सत्युग, त्रेता और द्वापुर व्यतीत होकर कलियुग के ५१०४ वर्ष व्यतीत हो गये हैं।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान हमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ४/१ गीता

भगवान विष्णु ने वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में १२, ०५, ३३, १०४ वर्ष पूर्व सूर्यवंश के अधिष्ठाता एवं प्रथम पुरुष विवस्वान (सूर्य) को इस लुप्त हुए योग का पुनः उपदेश किया। विवस्वान ने अपने पुत्र श्राद्ध देव जो वैवस्वत मनु के नाम से सातवें मनु के पद पर प्रतिष्ठित हुए, को इस योग के रहस्य को कहा था। वैवस्वत मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को इस योग का कथन किया। इसी योग को श्रीकृष्ण जी ने अपने शिष्य अर्जुन को कुरुक्षेत्र के मैदान में कहा था।

"स कालेह महता योगो नष्टः परन्तप" के सिद्धान्तानुसार यह योग इस धरा से लुप्त हो गया। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त हुए मौखिक रूप से उपदेशित किए जाने वाले इस योग का सैद्धान्तिक स्वरूप महर्षि कपिल मुनि ने चाक्षुष मन्वन्तर में स्थापित किया तथा तदुपरान्त भगवान पतञ्जलिदेव ने इस योग को समाधिपाद, साधन पाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद चार पादों में विभक्त करके क्रियात्मक स्वरूप प्रदान किया।

भगवान पतञ्जलिदेव ने उपरोक्त विभक्त हुए विभिन्न योगों का समन्वय योग के अष्टांगयोग में करके योग को नवीन स्वरूप प्रदान किया। 'तप: स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोग:' सूत्र के आधार पर योग दर्शन को गीता के कर्मयोग की संज्ञा दी है। अविद्या अर्थात् मिथ्याज्ञान का स्वरूप बतलाते हुए "अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या" सूत्र के द्वारा विचार प्रधान, जो बुद्धि की प्रधानता से ज्ञान योगी होते हैं, उनके लिये इस सूत्र के माध्यम से संसार की अनित्यता शरीर की अपवित्रता, को साक्ष प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा विचार करने पर सभी भोग दुःख रूप है। यह बात विचारशील साधक की समझ में आ जाती है। इसी प्रकार आसक्ति के कारण अज्ञानी पुरुष इस शरीर को ही आत्मा समझता है; परन्तु विचारशील पुरुष आत्मा को, जो अत्यन्त जड़ शरीर से सर्वथा भिन्न होकर अजर और चैतन्य है और उसकी बुद्धि में आत्मा

और अनात्म जड़ शरीर का भेद स्पष्ट हो जाता है। फलतः वह व्यक्ति शरीर और शरीर से सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों में आसक्त न होकर एक आत्म चिंतन में रत रहता है। **"ईश्वर प्रणिधानाद्वा"** सूत्र में ईश्वर की भक्ति अर्थात् शरणागति का होना परम आवश्यक बतलाया है। इससे भी निर्बीज–समाधि शीघ्र हो जाती है। **"समाधि सिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्"**, क्योंकि ईश्वर सर्वसमर्थ है वह अपने शरणापन्न भक्त पर प्रसन्न होकर उसको जीवन्मुक्त कर सकते हैं। इस प्रकार योग दर्शन में भक्ति योग का समन्वय किया है। 'प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य' सूत्र के द्वारा हठयोग का प्रतिपादन करके प्राणायाम की विशेषता को बतलाया है।

भगवान पतंजलि देव का यह अष्टांग योग सूत्रात्मक होने से सामान्य जन की समझ से परे होने के कारण ब्रह्म सूत्रकार महर्षि वेदव्यास जी ने इस पर अपना भाष्य देववाणी में लिखा; किन्तु व्यास भाष्य स्वयं बहुत गूढ़ है। उसके अर्थ को समझने के लिये वाचस्पति मिश्र ने तत्ववैशारदी और विज्ञानभिक्षु ने योग वार्तिकी की रचना की है।

"एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः"। इस योग को परम्परागत राजर्षियों ने सर्वप्रथम जाना। इस समय के मनु, इक्ष्वाक आदि सब राजर्षि थे। ये सब ग्रहस्थ थे। इस प्रकार यह योगविद्या ग्रहस्थों की विद्या है। उपनिषदों में इसके अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। छान्दोग्योपनिषद के पाँचवे अध्याय में छः ऋषियों ने तत्कालीन राजा अश्वपति से तथा जनकजी से श्री शुकदेवजी ने इस योगविद्या की शिक्षा को ग्रहण किया था।

कालान्तर में पुनः लुप्त हुई इस योग विद्या का हमारे दादा गुरू महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने पुनरुस्थान किया। उन्होंने मानवों के कल्याण हेतु इस योग में तीन बातों का विशेष रूप से समावेश किया।१। शक्तिपात द्वारा साधकों को समाधिस्थ करना।२। हठयोग के जटिल आसनों के स्थान पर 'जीवन तत्व साधन' के नाम से सरलतम आसनों का प्रचलन करना।३। आसनों द्वारा असाध्य रोगों की चिकित्सा करना।

अपने लीलावसान के पूर्व ही महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने अपने प्रिय एवं योग्यतम शिष्य योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को इस योग के प्रचार का कार्यभार सुपुर्द किया; जिसका उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक निर्वाह किया।

स्वामी ओमानन्द तीर्थ ने 'पतंजलि योग प्रदीप के द्वारा योग दर्शन के सूत्रों को व्यास भाष्य, योगवार्तिकी तथा भोजवृत्ति के उदाहरणों द्वारा पाठकों को समझाने का प्रयत्न किया है; परन्तु इसकी भाषा भी कहीं न कहीं पर अति क्लिष्ट होने से सूत्र का अर्थ साधारण पाठक की समझ से परे हो जाता है। हमारे पूज्यपाद गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अत्यन्त सरल व बोलचाल की भाषा में उपयुक्त उदाहरणों के द्वारा योग दर्शन के दुरुह रहस्यों को समझाने के लिये 'योग सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित किया है। योग के साधकों को इन ग्रन्थों को अवश्य पढ़ना चाहिये; जिससे वे अपने कल्याण पथ पर अग्रसर हो सकें। इति

* * *

श्री चन्द्र किशोर दूबे पर गुरुवर कृपा

प्रेषक—**केशवदेव उपाध्याय**, वाराणसी

सेवा निवृत्त प्रधानाचार्य श्री ठक्कर बाबा इण्टर कॉलेज काल्पी आदरणीय श्री चन्द्र किशोर दूबे जी, जिला जालौन के मूल निवासी हैं। इन दिनों ये काल्पी शहर में ही स्थायी रूप से निवास कर रहे हैं। भाई जी की धर्मपरायण एवं श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में अनन्य श्रद्धा रखने वाली पत्नी का नाम श्रीमती अखिलेश कुमारी देवी था, एवं सन् उन्नीस सौ इक्यानबे में इनकी जीवन ज्योति, श्री प्रभु जी की असीम सत्ता में समाहित हो गयी। आदरणीय दूबे जी के सुपुत्र सरकारी डाक्टर हैं एवं इनकी दो बच्चियाँ हैं। जो उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं एवं प्रतियोगात्मक परीक्षाओं की तैयारियाँ कर रही हैं। श्री दूबे जी से अनन्य प्रेम रखने वाले हमारे एक आदरणीय गुरूभाई का नाम है श्री विरेन्द्र जी एवं ये वर्तमान में "काल्पी कालेज" काल्पी के प्रधानाचार्य है तथा बड़े ही सरल, मृदुभाषी एवं श्री गुरुदेव भगवान की कृपाओं से ओत–प्रोत है। सन् अस्सी–इक्यासी में आदरणीय भाई श्री विरेन्द्र जी एकदिन साधना में बैठे थे तो इनके मन में दादा गुरुदेव, अखिल ब्रह्माण्ड नायक, परम योग–योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के स्थूल दर्शन की लालसा बहुत प्रबल हो गयी। ऐसी स्थिति होने पर दादा गुरुदेव जी ने इन्हें ध्यान में दर्शन दिये एवं आदेशित किये कि मैं अमुक तारीक दिन सोमवार को सायंकाल ठीक छः बजे चन्द्र किशोर के मकान पर पहुँचूगा, यदि हमें पहचान सको तो पहचान कर दर्शन कर लेना। आदरणीय श्री विरेन्द्र जी, दादा गुरुदेव जी की यह अमोघ वाणी सुनकर बहुत ही प्रसन्न एवं आनन्दित हुये। साथ ही उस नियत तिथि का बेसब्री से इन्तजार करने लगे।

निर्धारित तिथि एवं समय, सोमवार को सायंकाल करीब साढ़े छः बजे लम्बे, गौर वर्ण एवं हाथ में चिमटा लिए, काले वस्त्र पहने, काले एवं खूबसूरत दाढ़ी बाल वाले एक महात्मा खड़ाऊ पहने आदरणीय श्री चन्द्र किशोर दूबे जी की मकान पर पहुँच गये एवं सीढ़ियों के सहारे पहली मंजिल पर चढ़ना आरम्भ किये, जहाँ दूबे जी के परिवार का निवास स्थान था। उस समय दूबे जी की दोनों बच्चियाँ, जिनकी अवस्था मात्र आठ–दस साल की थी मुहल्ले के और बालक–बालिकाओं के साथ खेल रहे थे। खेलने वाले ये बच्चे जब ऐसे महापुरुष को देखें तो प्रेत (भूत) समझ कर डरकर अपनी मम्मी को जोर–जोर से चिल्लाते हुए पुकारने लगे, "कि मम्मी भूत मकान में जा रहा है; इसे रोको एवं हमें बचाओ–बचाओ"। बच्चों की आवाज सुनकर श्रीमती अखिलेश कुमारी देवी अपन मकान के भीतरी भाग से दौड़ती हुई सीढ़ियों की तरफ आयी। तब तक वो महात्मा जो सीढ़ियों की आधी ऊँचाई चढ़ गये थे, जल्द–जल्दी खड़ाऊ पहने नीचे आ गये एवं मकान से बाहर निकलकर जमुना नदी पर जाने वाले रास्ते पर तेजी से चल दिये। बच्चे भी अपनी मम्मी के साथ उनका पीछा किये जो मात्र पचास–साठ कदम आगे

बढ़ते–बढ़ते अर्न्तध्यान हो गये। सायंकाल करीब साढ़े सात बजे श्री विरेन्द्र सिंह जी को एकाएक स्मरण आया कि आज तो दादा गुरुदेव जी ने श्री दूबे जी के मकान पर स्थूल रूप से प्रकट होने का रहस्य बतलाया था, वे दौड़े–दौड़े श्री दूबे जी के मकान पर पहुँच गये। उस समय श्री दूबे जी के मकान पर उनके परिवार के सभी सदस्य उपस्थित थे। उचित अभिवादन के बाद इन्होंने प्रश्न किया कि कोई सन्त या साधु महात्मा सायंकाल आपके घर तो नहीं आया था। सभी लोगों ने एवं विशेष करके बच्चों ने कहा कि एक भूत (प्रेत) आया था और हम लोग जब हो–हल्ला किये तो वह जमुना नदी के जाने वाले रास्ते पर कुछ दूर चलकर अर्न्तध्यान हो गया। उस परिवार के सदस्यों की ऐसी बातें सुनकर श्री विरेन्द्र जी ने दोनों हाथ से अपना सिर पकड़कर निराशा भरे शब्दों में कहा कि आज हमें अनाथ नाथ के स्थूल दर्शन नहीं हो पाये। उनकी यह बात सुनकर श्री दूबे परिवार के सदस्यों ने जब कहा कि कैसा एवं किसके दर्शन की बात कर रहे हैं तो श्री विरेन्द्र सिंह जी ने पूरी घटना का सविस्तार वर्णन किया एवं बहुत देर तक उदास होकर बैठे रहे।

यह प्रसंग उस समय का है जब श्रीमती दूबे बड़ी लगन से आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव भगवान जी का साप्ताहिक, सामूहिक, आरती पूजा एवं सत्संग का कार्यक्रम प्रत्येक रविवार को बड़ी धूमधाम से मनाया करती थी। यह समय सन् नब्बे के दशक का था। इनके परिवार के अलावा करीब तीस–इक्तीस गुरुभाई बहन इस सत्संग में उपस्थित हो जाया करते थे। सत्संग का आरम्भ सूक्ष्म आरती से होता था एवं सत्संग की समाप्ति सामूहिक आरती से होता था। अन्तिम आरती से पूर्व पन्द्रह–बीस मिनट तक, "गोविन्द जै–जै, गोपाल जै–जै, राधा रमण हरि गोविन्द जै–जै' का संकीर्तन होता था। इस ध्वनि की अगुवायी स्वयं श्रीमती दूबे परम उत्साह, आनन्द एवं उल्लास के साथ करती थी। इस भजन, "गोविन्द जै–जै.....।" की ध्वनि का संकीर्तन ज्योंही आरम्भ होता था, श्रीमत दूबे को खुली आँखों दिखलायी देता था कि श्री गुरुदेव अपने एक हाथ से धोती सम्भालते एवं दूसरे हाथ में बेंत धारण किये बड़ी तेजी से आये एवं आकर आसन पर बैठे गये एवं सामूहिक आरती के बाद उसी तीव्रता से जाते हुए दिखलायी देते थे। यह अलौकिक दृश्य उन्होंने लगातार पाँच महीने तक पड़ने वाले साप्ताहिक सत्संगों में देखा। इसके बाद गंगा दशहरा का उत्सव पड़ा और ये नवासी के उत्सव में सम्मिलित होने श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश पहुँच कर श्री गुरुदेव भगवान के चरण–कमलों में प्रणाम निवेदित कर हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि महाराज जी। हमारे यहाँ होने वाले साप्ताहिक सत्संग में आप आते हैं। श्री गुरुदेव भगवान ने अपनी मधुर मुस्कान के साथ कहा कि नहीं लल्ली, "तुम्हें गलत–फहमी हुई होगी।" परन्तु आदरणीय बहन द्वारा बार–बार यह प्रार्थना करने पर की प्रभुजी हमें सत्य रहस्य का बोध कराने की कृपा करें। आराध्यदेव जी ने मधुर मुस्कान के साथ

धीमे स्वर में कहा कि लल्ली, तुमने जो दृश्य देखा है वह बिल्कुल–बिल्कुल सत्य है परन्तु तुम्हारे छत की जीना बिल्कुल खड़ी है एवं उस पर चढ़ने पर मैं थक जाता हूँ। इनकी छत की जीना बिल्कुल खड़ी है, यह बात आराध्यदेव जी के मुखार बिन्दु से सुनकर इन्होंने महान आनन्द का अनुभव किया, क्योंकि आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज स्थूल रूप से इनके मकान पर अभी तक नहीं गये थे। इस प्रकार अपनी अलौकिक, आध्यात्मिक एवं पारलौकिक शक्तियों का बोध श्री प्रभु जी इस परिवार को कराते ही रहते हैं।

आदरणीय श्री चन्द्र किशोर दूबे जी सन् उन्नीस सौ नवासी के इलाहाबाद कुम्भ मेला में अपने पूरे परिवार के साथ श्री चरणों में आये हुये थे। कुछ विशेष परिस्थिति वश इनकी धर्मपरायणा पत्नी नहीं आ पायी थीं, अतः अपने मकान की विशेष सुरक्षा एवं अपनी धर्मपत्नि की सुविधा हेतु इन्होंने एक विश्वास पात्र एवं ईमानदार नौकर को, जिसका नाम राजेन्द्र था घर की निगरानी के लिये नियुक्त कर दिया। जिन दिनों ये प्रयागराज कुम्भ मेले में थे उन्हीं दिनों इनके काल्पी निवास स्थान पर एक अलौकिक आध्यात्मिक घटना घटित हुई। नौकर श्री राजेन्द्र ने देखा कि प्रातः काल करीब पौने चार बजे एक नाटे कद, गठीले बदन तथा हाथ में छड़ी एवं कन्धे पर चादर रखे हुए एक आदमी आया, एवं उसके मकान के मुख्य दरवाजे के पास आते है, अन्दर से बन्द मकान का मुख्य दरवाजा अपने आप खुल गया। वह आदमी मकान में प्रवेश कर गया। उसके मकान में प्रवेश करते ही दरवाजा अपने आप स्वयं बन्द हो गया। वह मकान के अन्दर दो दरवाजों के सामने गये, दरवाजे अपने आप खुले एवं उनके अन्दर प्रवेश करने पर अपने आप बन्द हो गये एवं इस प्रकार वह आदमी पूजा घर में प्रवेश कर गया। नौकर श्री राजेन्द्र ने इस पूरी घटना को साश्चर्य अपने नेत्रों से साफ–साफ देखा। इतना दृश्य देखने के बाद वह थर–थर काँपने लगा एवं उसी समय वहाँ से निकलकर अपने घर चला गया। इसके बाद वह फिर सायंकाल घर की निगरानी के लिए आया परन्तु इस समय भी डरा हुआ एवं सहमा हुआ ही था। श्रीमती दूबे ने जब उससे बिना कुछ बताये घर छोड़कर चले जाने की बात पूछी तो वह झूठा बहाना बताकर बात को टाल गया।

आदरणीय श्री दूबे जी अपने बाल–गोपालों के साथ इलाहाबाद कुम्भ मेले से जब अपने मकान पर पहुँचे तो उनकी धर्मपत्नी ने यह पूरा विवरण बताया कि, कैसा नौकर आपने मकान की सुरक्षा के लिए रखा था कि एक दिन रात्रि में ही बिना बतलाये चला गया। श्री दूबे जी ने भी जब नौकर से इसका कारण पूछा, तो वह असत्य कारण बतलाया। इस बार कुम्भ मेला से श्री दूबे जी आराध्य देव जी का काल्पी के योग प्रचार कार्यक्रम की तिथि फरवरी में लेकर आये थे एवं उसी समय से उसके व्यापक प्रबन्ध में जुट गये थे।

फरवरी की निर्धारित तिथि को आराध्यदेव जी अपने पार्षद गणों के साथ योग प्रचार

कार्यक्रम करने काल्पी पहुँचे। श्री दूबे जी का एक भतीजा है। उसके मन में यह भाव था कि श्री गुरुदेव जी मकान पर ज्योंही कार से उतरकर जमीन पर अपने चरण कमल रखेंगे मैं अपनी दो नाली बन्दूक से फायर करके प्रसन्नता एवं आनन्द का भाव प्रकट करूँगा। अपने इस मनोभाव को मूर्तरूप देने के लिए वह छत की मुड़ेर (बारडर) पर चढ़ गया, बड़ी बेसब्री से उस क्षण का इन्तजार करने लगा। श्री गुरुदेव भगवान की नजर कार से उतरते ही, भाव विभोर अपने इस लाड़ले पर पड़ी जो फायर करने ही वाला था। श्री मुख ने मधुर मुस्कान के साथ गम्भीर वाणी में कहा, "लल्ला ! ये तो ब्राह्मण का मकान है एवं तुम क्षत्रियोचित कार्य कर रहे हो।" इतना कहकर श्री गुरुदेव मकान के अन्दर कार्यक्रम स्थल पर चले गये। इस बालक ने करीब दसों बार बन्दूक की नाल में गोली डालकर आवाज करने का भरपूर प्रयास किया परन्तु प्रत्येक बार धीरे से 'फुस' की आवाज ही हुई और वह भी धीरे से। अपनी मनोकामना पूर्ण न होने से वह बालक दुःखी था। उस श्रद्धावान अल्पज्ञ बालक को क्या पता कि जिसके संकल्प से पूरी सृष्टि का संचालन होता है, यदि उसके मन में भाव आ गया तो वह चाहे जितनी बार फायर करेगा बन्दूक से आवाज नहीं हो सकेगी।

दूसरी घटना का विवरण कुछ इस प्रकार रहा। नौकर राजेन्द्र ने (जिसे श्री दूबे जी ने कुम्भ मेला जाते समय अपने घर के निगरानी की जिम्मेदारी दी थी) जब श्री गुरुदेव भगवान को कार से उतरते देखा एवं देखा कि सभी लोग माल्यार्पण कर उनको साष्टांग प्रणाम कर रहे हैं तो उसने अपने मित्र कॉलेज के दूसरे चपरासी श्री कल्लू से पूछा, "कल्लू ये महापुरुष कौन हैं ? कल्लू ने सादर बतलाया कि यही श्री गुरुदेव भगवान है जिनके द्वारा पूरा योग प्रचार कार्यक्रम सम्पादित होना है। उसके बाद श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में उसका अनन्य प्रेम उमड़ पड़ा एवं उसने पूरे मनोयोग से आराध्यदेव जी के काल्पी के योग प्रचार कार्यक्रम में सराहनीय एवं अनुकरणीय सेवा की।

योग प्रचार कार्यक्रम की समाप्ति के अगले दिन काल्पी के करीब बारह पन्द्रह गुरुभाई बहन आदरणीय श्री दूबे जी के पास बैठकर कार्यक्रम में होने वाली श्री प्रभु की कृपाओं का बार-बार स्मरण एवं वर्णन कर रहे थे। इसी प्रसंग में नौकर श्री राजेन्द्र ने बतलाया कि साहब ! (श्री दूबे जी को सम्बोधित करके) एक बात जो श्री गुरूदेव भगवान से सम्बन्धित है, और जिसका रहस्य हम अब श्री गुरुदेव का स्थूल दर्शन पाकर समझ सके है, बड़ी विलक्षण है। आप जब कुम्भ मेला में प्रयागराज गये थे एवं हमको अपने घर की निगरानी का दायित्व सौंप गये थे, उस समय की है। आप लोगों के प्रयागराज प्रस्थान करने वाले दिन के बाद वाले दिन के पौने चार बजे प्रातः की है। बरामदे में पड़ी चौकी पर मैं पूर्ण रूप से जग रहा था एवं मुख्य दरवाजा बन्द था। बाकी सभी दरवाजे बन्द कर माताजी (श्री दूबेजी की धर्मपत्नी) मकान में सो रही थीं। मैंने देखा कि

भोर में प्रातः पौने चार बजे मुख्य दरवाजे की सिटीकनी एवं कुण्डी अपने आप खुल गयी। दरवाजे खुलने पर यही श्री गुरुजी महाराज मुख्य दरवाजे से मकान के अन्दर प्रवेश किये, उनके मकान के अन्दर प्रवेश करते ही मकान का मुख्य दरवाजा फिर अपने आप बन्द हो गया एवं दरवाजे में सिटीकनी तथा कुण्डी स्वयं लग गये। श्री गुरुदेव जी के शरीर से इतना प्रकाश निकल रहा था कि हमारी आँखे चौधियाँ गयी। उनके मकान में प्रवेश करने के बाद वे जिधर गये, उधर के दरवाजे स्वयं खुले एवं बन्द होते गये। इस प्रकार श्री गुरुदेव जी महाराज पूजा घर में प्रवेश कर गये एवं उनके पूजा घर में प्रवेश करने के बाद पूजा घर बाहर से स्वयं बन्द हो गया। नौकर श्री राजेन्द्र ने बतलाया कि काफी प्रयास करने के बाद भी, मैं इतना साहस नहीं जुटा सका कि उनको मकान में प्रवेश करने से रोक सकूँ। इससे मैं काफी डर गया एवं अमंगल की बात सोचकर उसी समय अपने मकान पर भाग गया। ड्यूटी पर दुबारा आने पर माताजी ने पूछा तो उनसे भी हमने झूठ बोला एवं आपको भी असत्य बात बतलायी। उसका यह प्रभु चरित्र वर्णन समाप्त होते ही, श्री गुरुदेव भगवान की जै, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जै की ध्वनियों से वातावरण आनन्द दायक हो गया। ऐसे हैं हमारे योगेश्वर श्री गुरुदेव जी महाराज। किसी गुरुभाई ने बिल्कुल ही ठीक कहा है—

देखा है जलवा तेरे द्वार का,
तेरा दर छोड़ क्यों मैं जाऊँ द्वारका।

* * *

सूचना

सभी गुरुभाई-बहिनों को सूचित किया जाता है कि अपने योग साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक उत्सव दिनांक २७, २८ व २९ मई २००४ तदनुसार बृहस्पतिवार, शुक्रवार व शनिवार को धूमधाम से मनाया जायेगा। सभी से आग्रह है कि वे उत्सव में भाग लें और पुण्य के भागी बनें।

जय गुरुदेव जी की !

आचार्य पूर्णचन्द्र शर्मा
श्री योग साधन आश्रम
रेलवे रोड, ऋषिकेश जिला—देहरादून

भाव-प्रसून

—श्रीमती सरिता भारद्वाज, नई दिल्ली

सत्गुरु छवि मोहि विसरति नाहीं।
भाल विशाल पै चन्दन कुंकुम, शोभा वरणि न जाही।
दीप्त दिव्य आभा युत श्रीमुख, रवि शशि देखि लजाही।
प्रेम पयोधि हैं कमल नयन दो, देखति ही लुड़काही।
वरद हस्त से आशिष पाकर के अधमाधम तरि जाही।
सिद्धयोग के दाता (सत्गुरु) को लखि ब्रह्मादिक झुकि जाहीं।
भगत वछल करुणा के सागर, डूबे सो तरि जाही।
चरण कमल की ज्योति अलौकिक, जनम जनम के पाप नसाही
कामधेनु से गुरुवर को तजि, "सरित" कहाँ अब जाही।।

बिन दरशन इतने दिन बीते।
इक–इक निमिष बिना देखे प्रभु, कोटि कल्प सम बीते।
याद आ रहे हैं वे क्षण पल, जो तुम्हरे संग बीते।
वह मुसकान मधुर चितवन, बिन देखे कल न परीते।
हृदय लगा सब दुख भगावत, पूछत सुख–दुःख प्रीते।
करुणा निधि हे दया के सागर, फिर क्यों हैं, हम रीते।
दरशन देकर प्यास बुझा दो, बहुत दिना हैं बीते।

जीवनदाता सर्व समर्थ श्री सद्गुरूदेव जी

प्रेषक—**मोतीलाल** कासगंज, एटा

जनवरी सन् १९६१ ई० में एक दिन शाम के समय मुझे प्रथम वार अचानक ही जंगल में जाते हुए श्री सद्गुरुदेव भगवान के शुभ दर्शन काफी दूर से हुए थे तो मेरा मन–मस्तिष्क उनके शुभ चरण कमलों में स्वाभाविक ही आकर्षित होकर श्रद्धावनत हो गया था तथा उनके जंगल में ओझल होने के थोड़ी देर बाद जब मैं सोरों के रेलवे स्टेशन पर पहुँचा (क्योंकि मैं उस समय एच०टी०सी० के प्रशिक्षण में एटा जा रहा था) तो वहाँ पर बैठे हुए पूर्व परिचित बाबा श्री रामस्वरूप शर्मा जी ने बताया कि उनके गुरुदेव जी योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज श्री सिद्धगुफा संवाई धाम से अपने प्रिय शिष्यों श्री वेदराम एम०एल०ए० आदि पर कृपा करने के लिए इस पावन नगरी सोरों में पधारे हैं। यह वार्ता हो ही रही थी कि मेरे पूर्व परिचित योगी श्री सूरज प्रसाद शर्मा जी श्री वेदराम एम०एल०ए० आदि लोगों के साथ श्री गुरुदेव भगवान की सुसम्मान सहित अगवानी करने हेतु स्टेशन पर ही आ गए। फिर तो मैं भी एटा जाना ही भूल गया और अपनी चिर प्रोषित मनोभिलाषा प्राप्त कर श्री गुरुदेव भगवान जी के पावन चरण कमलों की सेवा में आनन्दमग्न हो गया। श्री कल्याणघन जी ने भी मेरी हार्दिक प्रार्थना को स्वीकृत करते हुए दूसरे ही दिन दीक्षा प्रदान करने की कृपा कर दी तथा एक अजीब सी ध्यान प्रक्रिया द्वारा देव दर्शन कराके मेरा जीवन ही कृतार्थ कर दिया। फिर तो जीवन का क्रिया–कलाप ही बदल गया। जब भी अवकाश होता श्री गुरुदेव जी के पावन चरण कमलों में ही जाकर विश्राम मिलता। मेरी अधिकांश छुट्टियाँ भी सिद्ध गुफा पर तथा जून में ऋषिकेश आश्रम में ही बीता करती। परम कल्याणघन श्री महाराज जी भी अधिकांशतः यौगिक क्रियायें तथा ध्यानादि भी अपने ही संरक्षण में नियमित रूप से कराया करते थे तथा सभी की ध्यान स्थितियाँ भी बनी हुईं थीं।

मई–जून सन् १९६४ में श्री गुरुदेव जी की आज्ञानुसार योगी श्री–सूरज प्रसाद जी तथा ब्रह्मचारी योगी श्री ओम प्रकाश पालीवाल जी ने लक्ष्मण झूला से आगे फूल चट्टी पर जाकर नितान्त एकान्त में ४१ दिन का अनुष्ठान किया था। उसी समय ग्रीष्मावकाश होते ही मैं भी ऋषिकेश आश्रम पहुँच गया। लेकिन श्री महाराज जी तब तक आश्रम में नहीं पधारे थे अतः मैं भी वहाँ उपस्थित ब्र० श्री हरिनारायण जी के यहाँ कुछ सामान छोड़कर फूल चट्टी पर ही अनुष्ठान करने के उद्देश्य से पहुँच गया। अभी मेरा एक सप्ताह भी पूरा नहीं हुआ था कि एक दिन हम लोग वहाँ के ब्रह्मचारी श्री रामानन्द जी से एक सुन्दर व शीतल मनोरम झरना पूछकर वहीं पहाड़ों के बीच में घने जंगल में पहुँच गए। उस शीतल झरने के किनारे सुन्दर हरी बेलों के झुरमुट देखकर मेरा मन ऊपर पहाड़ पर चढ़ने का होने लगा। अतः मैंने अपना मौन तोड़कर

श्री प्रभुजी का भजन गाते हुए पहाड़ पर चढ़ना शुरू कर दिया। अभी बेलों के पास पहुँच ही पाया था कि मुझसे लगभग १५–२० मीटर ऊपर घनी बेलों में से निकलकर एक जंगली चीता–मुझे देख कर भी ऊपर पहाड़ की चोटी की तरफ ही चला गया। उस लम्बे चीते को देखते ही मेरे तो होश उड़ गए थे लेकिन प्राणिमात्र के रक्षक श्री प्रभुजी ने ही उस समय उस चीते से मेरे जीवन की रक्षा की थी नहीं तो वह चीता उसी दिन मुझे अपना भोजन बना लेता। इस दृश्य को नीचे झरने पर बैठे हुए दोनों योगियों ने भी देख लिया था अतः दूसरे ही दिन मुझे ऋषिकेश आश्रम भेज दिया।

मई–जून १९६६ में ऋषिकेश आश्रम में ही मुझे कुछ विशेष बीमारी का अनुभव हुआ लेकिन घर पहुँचकर दो माह बाद २० अगस्त ६६ से रक्तवमन शुरू हो गया। उसे कासगंज के प्रसिद्ध डॉक्टर भी बन्द नहीं कर सके तो मैं श्री गुरुदेव जी के पूर्व आदेशानुसार अपने पिता जी को साथ लेकर २४ अगस्त ६६ को श्री वृन्दावन धाम में पहुँच गया लेकिन तब तक लगातार रक्तवमन होने के कारण महान कमजोरी एवं मृत्युभय से व्याप्त हृदय बैठा जा रहा था फिर भी मैंने यथा तथा श्री गुरुदेव भगवान के अभय चरण कमलों में "अन्तिम प्रणाम" प्रेषित करने के लिए योगी श्री सूरज प्रसाद जी के लिए एक पत्र प्रेषित कर दिया (क्योंकि उस समय श्री महाराज जी लक्ष्मण झूला के पास एकान्तवास कर रहे थे तथा योगी श्री सूरजप्रसाद जी उनकी चरण सेवा में वहीं रह रहे थे) अतः योगी जी को जैसे ही मेरी ऐसी दयनीय स्थिति का पत्र मिला तो उन्होंने वही पत्र श्री गुरुदेव जी के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। फिर क्या था ? सर्वसमर्थ परम करुणानिधि जी ने तुरन्त ही अपनी करुण कृपादृष्टि श्री वृन्दावन धाम में मृतक अवस्था में पड़े हुए इस दीन के ऊपर डाल दी तथा पुनः जीवनदान देते हुए एक कृपा पत्र भी अपने ही कर कमलों से लिखकर इस दीन का मनोबल बढ़ाने के लिए Expressdelivery द्वारा प्रेषित कर दिया जो मुझे अतिशीघ्र ही प्राप्त हो गया जिसमें श्री नाथ जी ने बड़े ही स्पष्ट एवं प्रिय शब्दों में लिखा था कि "सौम्य तुमने ऐसे दीन शब्द क्यों लिखे कि "दास मोती का अन्तिम प्रणाम" भोले बालक तेरे साथ ऐसा नहीं होगा। यह मेरी इच्छा थी कि तुम किसी प्रकार श्री वृन्दावन धाम में पहुँच जाओ। अब तुम अवश्य ही पूर्ण स्वस्थ हो जाओगे। यह कृपा पत्र प्राप्त होने तक मेरा रक्त वमन बन्द हो गया तथा हॉस्पिटल में जो प्रवेश की परेशानी थी वह भी आसानी से खत्म हो गयी। श्री सद्गुरुदेव भगवान की अनुपम कृपा की स्पष्टानुभूति यह थी कि मेरे सगे सम्बन्धी और मैं जिस जीवन से निराश हो चुके थे वह पुनः प्राप्त हो गया था। स्वास्थ्य भी दिनों दिन सुधरता गया और कुछ ही दिनों में स्वस्थ होकर श्री वृन्दावन धाम की परिक्रमा करना, देव दर्शन करना एवं भजन करना ही मुख्य हो गया। विद्यालय से Medical leave ले चुका था।

श्री कृपानिधि जी भी एकान्तवास के बाद श्री वृन्दावन धाम में प्रत्यक्ष रूप से दर्शन लाभ कराने के लिए पधारे तथा योगी श्री सूरजप्रसाद जी को भी कई बार भेजने की कृपा की थी। लेकिन वहाँ के मैडीकल ऑफीसर ने छुट्टी नहीं दी तथा फेफड़े का ऑपरेशन करने के लिए कह दिया।

मैंने भी कह दिया कि जल्दी ही ऑपरेशन कर दिया जाय ताकि मैं फिट होकर अपनी ड्यूटी पर जा सकूँ। अतः ४ अप्रैल सन् १९६७ को जब मेरे बाँयें फेफड़े का ऑपरेशन किया गया तो उस समय भी मैं दो बार मौत के मुँह में चला गया था लेकिन श्री गुरुदेव भगवान की अनुपम कृपा से पुनः-पुनः मुझे जीवनदान मिलता गया। क्योंकि मैं भी हर समाचार श्री नाथ जी के अभय चरण कमलों में प्रेषित करता रहता था तथा श्री कृपानिधि जी भी अभय जीवन दान का शुभाशीर्वाद प्रदान करते रहते थे। जुलाई १९६७ में दुबारा श्री गुरुदेव भगवान जी ने श्री वृन्दावन धाम में ही प्रत्यक्ष दर्शन देने की कृपा की तथा मुझे अपने साथ ही कई प्रमुख तीर्थ स्थलों का दर्शन लाभ भी कराया जो चिरस्मरणीय है। अगस्त १९६७ में श्री वृन्दावनधाम से लौटकर मैं पुनः शिक्षण कार्य में लग गया तथा पूर्ववत् सभी क्रिया-कलापों के साथ ही श्री कल्याण धन जी शुभ चरण कृपा करके अन्य तीर्थ स्थलों का भी दर्शन लाभ करा दिया करते थे।

समयानुसार श्री प्रभुजी की कृपा से घर भी बाल-बच्चों आदि से पूर्ण सम्पन्न हो गया लेकिन जून सन् ६० में ऋषिकेश आश्रम से श्री नाथ जी की आज्ञा न मानकर मैं परिवार सहित घर चला आया तथा जब उनहोंने २५-२६ जून ६० की रात में अपना पार्थिव शरीर त्यागकर श्री महाप्रभुजी के परम धाम (दिव्यलोक) को आरोहण करते समय दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर मुझे सोते में ही शुभ दर्शन देने की कृपा की तो मैं आजीव से विचारों में खो गया और वह शुभाशीर्वाद देते हुए आरोहण कर गए। बाद में २० जून सन् १९६५ में अचानक ही स्कूटर से मैं एक गहरे गड्ढे में जा गिरा और मर गया क्योंकि गर्दन की हड्डी टूट गई थी हृदय की धड़कने २५ मिनट तक बन्द रहीं लेकिन पुनः जीवन दाता गुरुदेव भगवान जी ने चौथीवार जीवनदान दे दिया था। आज भी मैं पुराने हृदय रोग से पीड़ित एवं एक फेफड़े का होते हुए भी ३० जून सन् २००१ में शिक्षण कार्य से पूर्ण अवकाश प्राप्त करके उन्हीं के अभयशुभ चरण कमलों का अनन्य चिन्तन करता हुआ सकुशल जीवन यापन कर रहा हूँ। आज उन्हीं सर्व समर्थ कल्याणधन जी की कृपा से सभी बच्चे शिक्षित होकर उन्हीं नाथ जी की कृपा का अनुभव करते हुए अपने-अपने जीवन यापन में भी लग चुके हैं तथा सभी पावन शुभ पर्वों पर नाथ जी के पावन स्थलों का भी दर्शन लाभ होता रहता है। यह सब कुछ उन्हीं सर्व समर्थ की कृपा से सहज सुलभ हो जाता है।

* * *

स्वामी रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी

सत्य

● हृदय के भीतर भक्तिभाव रखो, कपट चतुराई छोड़ दो। जो सांसारिक कर्म करते हैं, दफ्तर में काम या व्यापार करते हैं, उन्हें भी सत्यनिष्ठ होना चाहिए। सच बोलना कलियुग की तपस्या है।

● सत्यवादी, सत्यनिष्ठ हुए बिना सत्यस्वरूप भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती। सत्यवचन के प्रति दृढ़ निष्ठा होनी चाहिए। सत्य को दृढ़ता से पकड़े रहने पर ईश्वर लाभ होता है।

● मिथ्या का कोई भी रूप अच्छा नहीं। मिथ्या वेष भी अच्छा नहीं। यदि तुम्हारा मन तुम्हारे वेष के अनुकूल न हो तो उस मिथ्या वेष से महान् अनर्थ हो जाता है। झूठ बोलते–बोलते या बुरे काम करते–करते धीरे–धीरे मनुष्य का भय चला जाता है और वह पाखण्डी बन बैठता है।

● एक ऋणग्रस्त व्यक्ति ने अपने साहूकार से बचने के लिए पागल का स्वांग रखा था। डाक्टर, वैद्य कोई उसे सुधार नहीं पा रहे थे। उसका पागलपन बढ़ता ही जा रहा था। अन्त में एक अनुभवी वैद्य ने बीमारी का सच्चा कारण ताड़ लिया और उसे डाँटते हुए कहा, "महाशय, यह आप क्या कर रहे हैं ! सावधान हो जाइए–

कहीं पागल की नकल करते करते आप सचमुच ही पागल न बन जाएँ। इस थोड़े ही समय के अन्दर आपके दिमाग में कुछ–कुछ सही गड़बड़ी के लक्षण भी दिखाई देने लगे हैं।" यह सुनकर वह व्यक्ति होश में आया और उसने पागलपन का ढोंग करना छोड़ दिया। सदा किसी भाव की नकल करते रहने से मनुष्य धीरे–धीरे वास्तव में उसी भाव को प्राप्त हो जाता है।

ब्रह्मचर्य

● जैसे काँच में यदि पारा लगा हुआ हो तो उसमें चेहरा दिखाई देता है वैसे ही ब्रह्मचर्य पालन के द्वारा वीर्यधारण करने से ब्रह्मदर्शन हो सकता है।

● ब्रह्मचर्यपालन किए बिना, वीर्यधारण किए बिना सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्वों की धारणा नहीं होती।

● शुकदेव आदि ऊर्ध्वरेता थे, उनका रेतःपात कभी नहीं हुआ। कुछ वैर्य रेता भी होते हैं। इनका पहले रेतःपात हुआ है परन्तु बाद में इन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर वीर्यधारण किया है। यदि कोई बारह वर्ष तक वैर्यरेता रहे तो उसमें एक विशेष शक्ति उत्पन्न होती है। भीतर एक नई नाड़ी पैदा होती है–उसे मेधानाड़ी कहते हैं। वह नाड़ी पैदा होने से मनुष्य सब बातें स्मरण में रख सकता है, सब कुछ जान सकता है।

बारह वर्ष अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने पर मनुष्य की मेधानाड़ी खुल जाती है। तब उसकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण कुशल तथ अतिसूक्ष्म तत्वों की भी धारणा करने में समर्थ हो जाती है।

● वीर्यपात करने से शक्तिक्षय होता है। स्वप्नदोष अपने आप कुछ निकल जाता है, उसमें

हानि नहीं। वह खाद्य सदापरिवर्तनशील जीवन के विभिन्न घटनाचक्र में पड़कर कभी–कभी वह उसे खो बैठता है।

पिपीलिकागति–पिपीलिका (चींटी) धीरे–धीरे बढ़ती हुई खाद्यवस्तु के निकट जाती है और उसे मुँह में लेकर धीरे–धीरे अपनी जगह पर लौटकर उसका मजा चखती है। यह पिपीलिका गति ही साधना ही श्रेष्ठ साधना है–इसमें फल की प्राप्ति और उसका उपभोग बिल्कुल निश्चित है।

● जिसे मछली पकड़ने का शौक है वह अगर सुने कि अमुक तालाब में अच्छी बड़ी–बड़ी मछलियाँ हैं, तो वह पहले जिन्होंने उस तालाब से मछली पकड़ी है उनके पास जाता है और पूछता है, 'क्या उस तालाब में सचमुच ही बड़ी मछलियाँ है। ? और अगर हों तो कौन सा चारा लगाने से वे फँसती हैं ?' इन सब जरूरी बातों की जानकारी इकट्ठा करके वह उस तालाब में जाकर बंसी लगाकर बैठता है। काफी समय तक धीरज के साथ बैठे रहने के बाद अन्त में उसकी बंसी में बड़ी मछली आ फँसती है। धर्ममार्ग में भी इसी प्रकार, साधु–महापुरुषों की बात पर विश्वास रखकर, भक्तिरूपी चारा लगाकर, हृदयरूपी बंसी डाले धैर्य के साथ बैठे रहना पड़ता है, तभी अन्त में भगवान् की प्राप्ति होती है।

● श्री रामकृष्ण कहा करते थे–"क्या तुम मेरे आदेश का सोलहों आना पालन कर सकोगे ? मैं जो कहता हूँ उसका एक आना भी यदि तुम कर सको तो तुम्हारी मुक्ति निश्चित है।"

● आत्मज्ञानलाभ के लिए साधना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु यदि दृढ़ विश्वास रहे तो थोड़ी ही साधना से काम बन जाता है।

● एक बार यदि किसी की भगवन्नाम की शक्ति पर विश्वास हो जाए और वह सतत नाम जपने लगे तो फिर उसके लिए विवेक–विचार या अन्य किसी भी तरह के साधन–भजन की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसके सब सन्देह दूर हो जाते हैं, चित्त शुद्ध हो जाता है तथा नाम की सामर्थ्य से स्वयं भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है।

● वेद–पुराण का श्रवण करना पड़ता है, पर तन्त्र का प्रत्यक्ष अनुष्ठान करना पड़ता है। हरिनाम मुख से बोलना और कान से सुनना भी पड़ता है, जैसे किसी–किसी बीमारी में दवा खानी भी पड़ती है और लगानी भी।

सिद्ध दो तरह के होते हैं–साधनसिद्ध और कृपासिद्ध। कोई–कोई बड़ी मेहनत करके नहर काटकर या पानी खींचकर खेत को सींचते हैं, तब कहीं उन्हें अच्छी फसल मिलती है। परन्तु किसी–किसी को पानी लाने या सींचने का कष्ट ही नहीं उठाना पड़ता, बारिश आकर खेत में अपने आप पानी भर जाता है। माया के हाथों से छुटकारा पाने के लिए प्रायः सभी को कष्ट साध्य साधन–भजन करना पड़ता है। परन्तु कृपासिद्ध को कष्ट नहीं उठाना पड़ता, ईश्वर की कृपा से वह वैसे ही मुक्त हो जाता है। परन्तु ऐसे कृपासिद्ध विरले ही होते हैं।

एकाग्रता तथा ध्यान

● ध्यान और चिन्तन–मनन का सतत अभ्यास करना चाहिए।

● सन्ध्या हो जाने पर सब काम छोड़कर ईश्वर चिन्तन करना चाहिए। अंधेरा छा जाने पर मन में अपने आप ईश्वर का विचार उठता है। 'अभी–अभी सब कुछ दिखाई दे रहा था, पर अब तो सब अंधेरे में ओझल हो गया। ऐसा किसने किया ?'–इस तरह के विचार आते हैं। इसीलिए सन्ध्या के समय सब काम छोड़कर उन्हें पुकाराना चाहिए। देखा नहीं, मुसलमान लोग कैसे सब काम छोड़कर ठीक समय पर नमाज़ पढ़ते हैं।

● अगर सरसों की पुड़िया में से एक बार सरसों के दाने बिखर गए तो फिर उन्हें चुनकर इकट्ठा करना जिस प्रकार दूभर हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का मन यदि एक बार संसार के विषयों में बिखर जाए तो फिर उसे समेटकर एकाग्र करना दूभर हो जाता है।

● ध्यान मन में, वन में या कोने में करना चाहिए।

● प्रथम अवस्था में निर्जन स्थान में जाकर एकाग्र चित्त से ईश्वर चिन्तन करना चाहिए, नहीं तो मन में नाना विक्षेप आते हैं। दूध और पानी को यदि एकत्र कर दो तो दूध पानी में मिल जाएगा; परन्तु यदि उसी दूध का निर्जन में मक्खन बना लो तो वह पानी में उतराता रहेगा–मिलेगा नहीं। इसी तरह साधना अभ्यास के द्वारा चित्त की एकाग्रता प्राप्त कर लेने पर मनुष्य चाहे जिस परिस्थिति में रहे, उसका मन उससे ऊपर उठकर ईश्वर में ही लीन रहता है।

● श्रीरामकृष्ण कभी–कभी अपने शिष्यों से कहा करते "ध्यान आरम्भ करने के पहले एक बार (अपनी ओर दिखाते हुए) इसका चिन्तन कर लिया करना। यह क्यों कहता हूँ जानते हो ?–

इस पर तुम लोगों का विश्वास है, इसलिए इसके बारे में सोचते ही भगवान् की याद आ जाएगी। जैसे, गौओं के झुण्ड को देखते ही चरवाहे की बात याद आती है, वकील को देखते ही अदालत कचहरी की बात याद आती है, बेटे को देखते ही उसके बाप की याद आती है, वैसे ही मन अनेक विषयों में बिखरा रहता है, इसके बारे में सोचते ही पूरा मन एक जगह सिमट आएगा, और उस एकाग्र मन को ईश्वरचिन्तन में लगाने पर ठीक–ठीक ध्यान हो सकेगा।"

● मन को एकाग्र करने का सबसे सरल उपाय है उसे दीप की शिखा पर स्थिर करना। शिखा के सब से भीतर का नीला भाग मानो कारणशरीर है। उस पर मन को स्थिर करने से मन शीघ्र ही एकाग्र हो जाता है। इस नीली ज्योति के बाहर का भाग मानो सूक्ष्मशरीर है और उसके भी बाहर का भाग स्थूलशरीर।

● अपनी साधनावस्था का उल्लेख करते हुए श्री रामकृष्ण भक्तों से कहा करते–"उस समय इष्टचिन्तन और ध्यान करने के पहले ऐसा सोचा करता था मानो मन को अच्छी तरह से धो ले रहा हूँ; मन के भीतर (कुचिन्ता, वासना आदि) जो कुछ मैल या गन्दगी है वह सब अच्छी तरह धोकर मन को स्वच्छ कर लेने के बाद उसमें इष्टदेव को लाकर बिठा रहा हूँ। ऐसा किया करो।"

● ध्यान करते समय ऐसा चिन्तन किया करो कि मानो तुम अपने मन को रेशम की रस्सी से इष्टदेवता के चरणकमलों के साथ बाँधकर रख रहे हो, ताकि वे वहाँ से और कहीं न जा पाएँ। रेशम की रस्सी किसलिए कह रहा हूँ ? वे चरणकमल अत्यन्त कोमल हैं, दूसरी रस्सी से बाँधने पर उन्हें कष्ट होगा, इसलिए।

● ध्यान करते समय बीच-बीच में साधक को एक प्रकार की नींद सी आया करती है, उसे योग निद्रा कहते हैं। इस अवस्था में कई साधकों को ईश्वरीय रूपों के दर्शन होते हैं।

● सात्विक मनुष्य किस प्रकार ध्यान करता है जानते हो ? वह गहरी रात के समय मसहरी के भीतर बिछौने पर बैठकर ध्यान किया करता है, ताकि कोई जान न पाए।

● ईश्वर में बिलकुल डाइल्यूट (एकरूप) हो जाओ—जैसे धातु तेजाब में गलकर एक हो जाती है।

● मन के स्थिर होने पर श्वास स्थिर होता है—कुम्भक हो जाता है। यह कुम्भक भक्तियोग के द्वारा भी होता है, तीव्र भक्ति से भी श्वास स्थिर हो जाता है।

● गहरे ध्यान में ध्येय वस्तु का यथार्थ स्वरूप प्रकट होकर ध्याता के अन्तःकरण को प्रकाशित कर देता है।

ईश्वरार्पण

—जो सरल भक्ति-विश्वास के साथ प्रभु के चरणों में सर्वस्व समर्पण कर देता है, उसे बहुत जल्दी ईश्वर प्राप्ति होती है।

—संसार में रहना या संसार का त्याग करना भगवान् की ही इच्छा पर निर्भर है। इसलिए उन्हीं पर सब कुछ सौंपकर अपना कर्तव्य किए जाओ। इसके सिवा तुम कर ही क्या सकते हो ?

—मैदान में जमा हुआ पानी किसी के इस्तेमाल न करने पर भी अपने आप धूप से सूख जाता है। पापी मनुष्य भी यदि ईश्वर के ऊपर निर्भर होकर पड़ा रहे तो उनकी दया से अपने आप पवित्र हो जाता है।

—प्रश्न—संसार में हमें किस प्रकार रहना चाहिए ?

उत्तर—सब कुछ भगवान् को समर्पित कर दो, स्वयं को भी समर्पित कर दो। ऐसा करने पर फिर कोई तकलीफ नहीं रह जाएगी। तब तुम देख पाओगे कि सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है।

—ईश्वर को ब-कलमा दे देना—मैं-पन बिलकुल न रखते हुए ईश्वर की ही इच्छा पर अपना सब कुछ सौंप देना—इससे बढ़कर सरल और सीधा रास्ता और नहीं है।

बन्दर का बच्चा अपनी माँ को कसकर पकड़े हुए उससे लिपटा रहता है, परन्तु बिल्ली का बच्चा पड़े-पड़े सिर्फ 'म्याऊँ-म्याऊँ' किया करता है, बिल्ली स्वयं ही उसे मुँ में पकड़कर उठा ले जाती है। बन्दर का बच्चा अगर हाथ छोड़ दे तो नीचे गिर पड़ेगा क्योंकि उसने स्वयं अपनी माँ को पकड़ रखा है। परन्तु बिल्ली के बच्चे को गिरने का भय यनहीं है। क्योंकि उसे उसकी माँ ने पकड़ रखा है। पुरुषकार और ईश्वरनिर्भरता में यही अन्तर है।

–एक आदमी अपने एक बच्चे को गोद में लिये और दूसरे बच्चे को अपना हाथ दिये हुए खेत की मेड़ पर से चला जा रहा था। चलते–चलते आसमान में एक चील को उड़ते देख दूसरा बच्चा, जो अपने पिता का हाथ पकड़कर चल रहा था, मारे खुशी के पिता का हाथ छोड़ ताली पीटते हुए 'पिताजी, देखो कैसी चिड़िया है' कहते हुए चिल्ला उठा। पर हाथ छोड़ते ही वह ठोकर खाकर गिर पड़ा। जो बच्चा पिता की गोद में था, वह भी खुश होकर तालियाँ बजा रहा था, पर वह नहीं गिरा क्योंकि पिता ने उसे पकड़ रहा था। इसमें से पहला बच्चा पुरुषकार का उदाहरण है और दूसरा ईश्वरनिर्भरता का।

–श्रीमती राधिका को एक बार अपने सतीत्व की परीक्षा देनी पड़ी। उन्हें एक हजार छेदवाले घड़े में पानी भरकर लाने को कहा गया। जब वे वह सहस्रधारा कलश भरकर चलने लगीं तो उसमें से एक बूंद भी पानी नहीं गिरा। यह देख सभी लोग उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि ऐसी सती दूसरी न होगी। इस पर श्रीमती ने कहा, "तुम लोग मेरा जयघोष क्यों करते हो ? कहो, 'श्रीकृष्ण की जाय हो, श्रीकृष्ण की जय हो।' मैं तो उनकी एक दासी मात्र हूँ।"

–ईश्वरनिर्भरता कैसी होती है ? जैसे कड़ी मेहनत करने के बाद तकिए से टेककर बैठे हुए आराम से हुक्का पीना। अर्थात् किसी तरह की फिक्र नहीं है, जो करना हो ईश्वर ही करेंगे यह भाव।

–संसार में आँधी में उड़ने वाली जूठी पत्तल की तरह रहा करो। जूठी पत्तल आँधी के भरोसे निर्भर रहती है, आँधी उसे जहाँ उड़ा ले जाती है, वहीं जाती है–कभी किसी घर के भीतर तो कभी कूड़े–कचरे में। इसी तरह, प्रभु ने तुम्हें संसार में रख छोड़ा है, तो अभी संसार में रहो, फिर जब वे तुम्हें इससे अच्छी जगह पर ले जाएँगे तब उनके भरोसे वहीं रहना। उन पर निर्भर होकर निर्लिप्त रूप से पड़े रहना।

इष्ट की आवश्यकता

–घर की बहू, सास–ससुर, जेठ–जेठानी सब का आदर सम्मान करती है, सब की सेवा करती है, किसी की अवज्ञा या उपेक्षा नहीं करती। परन्तु अपने पति को वह सब से अधिक चाहती है। इसी तरह तुम भी अपने इष्टदेवता पर दृढ़ एकनिष्ठ भक्ति रखो पर अन्य देवी–देवताओं की उपेक्षा मत करो। सब देवों के प्रति श्रद्धा रखो कारण सभी देव एक ही परमेश्वर के रूप हैं।

–चौसर के खेल में गोटी सब खानों का चक्कर लगाए बिना मंजिल पर नहीं पहुँचती। यदि दो गोटियाँ जोड़ी बाँधकर इकट्ठा चलें तभी उन्हें कोई काट नहीं सकता, नहीं तो अकेली गोटी मंजिल के पास पहुँचकर पकते–पकते भी कट जा सकती है। इसी प्रकार साधना के मार्ग पर भी यदि गुरु और इष्ट के साथ युक्त होकर आगे बढ़ा जाए तो बाधाविघ्न का भय नहीं रहता, यात्रा निर्विघ्न रूप से सफल हो सकती है।

–कलकत्ता जाने के लिए कई रास्ते हैं। एक बार किसी मुसाफिर ने एक आदमी से कलकत्ता जाने का रास्ता पूछा। उस आदमी ने कहा, इस रास्ते से चले जाओ। थोड़ी दूर चलकर उसने और एक जन से रास्ता पूछा। उसने और एक रास्ता बताया। इस तरह वह थोड़ा सा आगे बढ़कर किसी से रास्ता पूछता और उसके दूसरा रास्ता बताने पर अपना पहला रास्ता छोड़ उसी पर चलने लगता। ऐसा करते हुए वह आखिर तक रास्तों पर ही भटकता रहा, कलकत्ता नहीं पहुँच पाया। यदि कलकत्ता जाना हो तो जो ठीक रास्ता जानता है ऐसे एक ही व्यक्ति से रास्ता पूछकर उसी के निर्देशानुसार चलना चाहिए। इसी भाँति, यदि ईश्वर के निट पहुँचना हो तो एक जन का निर्देश मानकर चलो, नहीं तो फिजूल भटकते फिरोगे।

–एक आदमी कुआँ–खोदने गया। थोड़ा सा खोदने के बाद ही पानी नहीं आते देख उसने वह जगह छोड़ दी और दूसरी जगह खोदना शुरू किया। पर जब बहुतसी जमीन खोद चुकने के बाद वहाँ पानी नहीं मिला तब उसने वह जगह भी छोड़ दी और तीसरी जगह कुआं खोदने लगा। पर फिर वही हाल हुआ। इस प्रकार आखिर तक वह कुआँ नहीं खोद पाया। पहले ही स्थान पर यदि वह धीरज के साथ खोदते रहता तो उसे इतनी मेहनत भी नहीं करनी पड़ती और पानी भी मिल जाता। धर्ममार्ग पर भी इस तरह करते हुए बहुत से हताश होकर सारा विश्वास गंवा बैठते हैं।

– स्त्री यदि अपने पति के प्रति एकनिष्ठ हो तो वह सती परलोक में भी अपने पति से जा मिलती है। इसी प्रकार अपने इष्टदेवता पर एकनिष्ठ भक्ति हो तो ईश्वर दर्शन होता है।

❊ ❊ ❊

विशेष

गुरुदेव अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज का दिव्य चरित्र 'महायोगी की लोकयात्रा' के नाम से आचार्य ब्र० दासलालजी के द्वारा अभी–अभी प्रकाशित किया गया है। इच्छुक व्यक्ति आचार्य जी से सम्पर्क करके पुस्तक प्राप्त कर सकते हैं। पुस्तक का मूल्य एक सौ रुपये (डाक खर्च अलग से) है। जो व्यक्ति मनीआर्डर से मंगवाना चाहते हैं, उन्हें आचार्य दासलाल ब्रह्मचारी श्री सिद्धगुफा, संवाई (एत्मादपुर) आगरा के नाम से राशि भेजकर मंगानी चाहिये।

व्यवस्थापक–सिद्धयोग

भक्ति ही मृत्यु को सुधारती है।

(संत डोंगरेजी महाराज)

प्रभु से प्रतिदिन प्रार्थना करो कि मेरी मृत्यु के समय अवश्य आना। शरीर ठीक हो तो ध्यान–जप हो सकता है। अन्त–काल में कष्ट से देहानुसंधान होता है। जिसमें परमात्मा का ध्यान करना कठिन है।

भीष्म श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं—नाथ ! कृपा करें। जैसे खड़े हैं, वैसे ही रहें—'स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।'

श्रीकृष्ण सोचते हैं कि इन्होंने मुझे बैठने के लिये भी नहीं कहा। पुण्डलीक की सेवा याद आती है। तुकराम ने प्रेम से एक बार पुण्डलीक को उलाहना दी थी 'मेरे बिट्ठलनाथ जब द्वार पर आये तो आपने उनका सम्मान नहीं किया। मेरे प्रभु को आसन भी नहीं दिया।'

प्रतिदिन प्रभु से प्रार्थना करो अपनी मृत्यु को सुधारने के लिये। शरीर में जब शक्ति है तो खूब भक्ति करो और प्रभु को मनाओ।

श्रीकृष्ण कहते हैं—दादाजी ! इन धर्मराज को लगता है कि उन्होंने ही सबको मारा है। उनके कारण ही सबका सर्वनाश हो गया। उन्हें शान्ति मिले—ऐसा उपदेश आप करें।

श्री भीष्मपितामह कहते हैं—रुकिये। धर्मराज की शंका का निवारण मैं बाद में करूँगा। पहले मेरी एक शंका का समाधान आप करें। पहले मेरे इस प्रश्न का आप उत्तर दें—मेरा जीवन निष्पाप है, मेरा मन पवित्र है, मेरा तन भी पवित्र है, मेरी इन्द्रियाँ भी शुद्ध हैं। मैं यह बात उनसे कर रहा हूँ जो सबके मन की बातें जानते हैं। मैंने जब पाप किया ही नहीं, तब फिर मुझे यह दण्ड क्यों मिल रहा है, मुझे बाणशय्या पर क्यों सोना पड़ा ? मुझे अतिशय वेदना क्यों होती है। ? मैं निष्पाप हूँ, फिर भी मुझे क्यों दण्ड देते हैं। ?

भगवान् कहते हैं—'दादाजी ! आपने कोई पाप नहीं किया है, यह सत्य है। इसी कारण तो मैं आपसे मिलने आया हूँ। आपने स्वयं कोई पाप नहीं किया; फिर भी आपने अपनी आँखों से पाप होते देखा है। आपने जो पाप देखा, उसी का यह दण्ड है।' कोई पाप करे तो उसे देखना भी पाप है। किसी के पाप का विचार करना भी पाप है। इसलिये किसी का पाप देखना नहीं, सुनना नहीं और किसी से कहना भी नहीं चाहिये।

भीष्म कहते हैं—'मुझे स्मरण नहीं आ रहा है कि मैंने कौन–सा पाप देखा है ?

श्रीकृष्ण कहते हैं—"दादाजी ! आप भूल गये होंगे, किंतु मैं तो नहीं भूला हूँ। मैं ईश्वर हूँ। मुझे तो सब कुछ स्मरण रखना ही पड़ता है। आप स्मरण करें, एक बार जब आप सभा में बैठे थे, वहाँ दुःशासन द्रौपदी को ले गया था ! आप उस समय वहीं थे। द्रौपदी ने कहा था कि 'द्यूत में सब कुछ हारा पति अपनी पत्नी को दाँव पर नहीं लगा सकता।' दुर्योधन ने कहा था कि 'अब द्रौपदी दासी बन गयी, उसे निर्वस्त्र करो।' तो उस समय द्रोपदी ने आपसे कहा था कि हारे हुए पति को अपनी स्त्री दाँव पर लगाने का अधिकार नहीं है। दादाजी ! आप न्याय करें कि

मेरी स्थिति क्या है ? उस समय आपने कहा था कि 'दुर्योधन का अन्न ग्रहण करने से मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है' और आप चुप रह गये। ऐसा घोर पाप सभा में हो रहा था और आप उसे देखते रहे। यह आप जैसे ज्ञानी को शोभा नहीं देता था। द्रौपदी का अपमान आप सभागृह में देखते रहे। द्रौपदी को तो आशा थी कि आप जैसे ज्ञानी सभा में हैं तो वे न्याय करेंगे ही। आपने उस समय दुविधा में रहकर अन्याय को नहीं रोका। अतः निराश होकर द्रौपदी ने पुकारा—

हे कृष्ण द्वारिकावासिन् क्यासि यादवनन्दन।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।।

—द्रौपदी की पुकार सुनकर मैं वहाँ गुप्त रूप से आ पहुँचा। मैंने सब कुछ देखा। दुःशासन द्रौपदी की साड़ी खींच रहा था और आप केवल देखते हुए बैठे थे। सभा में हो रहे अन्याय को आपने चुपचाप होने दिया। इसी पाप का यह दण्ड आपको मिल रहा है।"

भीष्मपितामह ने नमन किया। उन्होंने फिर धर्मराज को उपदेश दिया। स्त्रीधर्म, आपद्धर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म आदि प्रसंग महाभारत के शान्तिपर्व में आये हैं और फिर उन्होंने परमधर्म का उपदेश किया।

युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह से पूछा—सभी धर्मों में से किस धर्म को आप श्रेष्ठ मानते हैं ? किसका पालन करने से जीव जन्म-मरण रूपी सांसारिक बन्धन से मुक्त हो सकता है ?

भीष्मपितामह ने कहा—'स्थावर-जंगम-रूप संसार के स्वामी, ब्रह्मादि देवों के देव, देश, काल और वस्तु से अपरिच्छिन्न, क्षर-अक्षर से श्रेष्ठ पुरुषोत्तम के सहस्रनामों का निरन्तर तत्परता से पाठ, स्मरण एवं गुणसंकीर्तन करने से मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

विष्णुसहस्रनाम का पाठ करना परमधर्म है। 'शिवमहिम्नः स्तोत्रं' और विष्णु सहस्रनाम' का पाठ प्रतिदिन करें। शिवजी की स्तुति करने से ज्ञान मिलता है, ज्ञान से भक्ति दृढ़ होती है। विष्णु भगवान् की स्तुति करने से पाप जल जाता है। विष्णुसहस्रनाम का पाठ करने से ललाट पर लिखे हुए विधाता के लेख भी बदल जाते हैं। वह जीव को जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त करता है। भगवान् शंकराचार्य को विष्णुसहस्रनाम का पठन बहुत प्रिय था। उन्होंने सबसे पहले विष्णुसहस्रनाम पर ही भाष्य लिखा है। उनका अन्तिम ग्रन्थ है ब्रह्मसूत्र का भाष्य और फिर उन्होंने कलम छोड़ दी।

विष्णुसहस्रनाम का पाठ प्रतिदिन दो बार करो। बारह वर्षतक ऐसा करने से अवश्य फल मिलेगा। एक बार रात को सोने से पहले पाठ करो। इसमें दिव्यशक्ति है। ललाट पर लिखे गये लेखों को मिटाने और बदलने की शक्ति इसमें है। गरीब आदमी विष्णुयाग कैसे कर सकता है; किन्तु वह विष्णुसहस्रनाम का पंद्रह हजार पाठ करे तो उसे एक विष्णुयाग का पुण्य मिलता है।

भोजन की भाँति भजन का भी नियम होना चाहिये। बारह वर्ष तक नियमपूर्वक सत्कर्म करो। फिर अनुभव होगा। चाहे कोई भी काम हो, भगवान् का भजन नियमित करो। जिस परमात्मा की कृपा से सुख मिला, पुत्र मिला, उस ठाकुरजी का स्मरण जीव न करे, तो इससे बड़ा पाप और कौन-सा होगा ?

फिर भीष्मपितामह भगवान् की स्तुति करते हुए बोले—'हे नाथ ! आप का दर्शन मैं खाली हाथों कैसे करूँ ? मैं आपको क्या अर्पण करूँ ?'

भगवान् जीव से धन-सम्पत्ति नहीं माँगते। वे तो मन-बुद्धि ही माँगते हैं।

भीष्मपितामह ने कहा—'मैं अपना मन और बुद्धि आपके चरणों में रखता हूँ।

यह जीव बड़ा कपटी है। अधिक क्या कहूँ ? कोई संकट आ जाय तो रणछोड़ रायजी का दर्शन करने जाता है। वहाँ ग्यारह रुपये भेंट चढ़ाता और कहता है कि 'हे नाथ ! मैंने अदालत में अपने भाई पर दावा किया है, मेरा ध्यान रखना।' ध्यान रखने से उसका अभिप्राय यह कि अदालत में मेरे साथ चलना। वह वकील को तो तीन सौ रुपये देगा और ठाकुरजी को ग्यारह रुपये में ही समझा देना चाहता है।

भगवान् कहते हैं कि मैं तो सब कुछ देखता, जानता और समझता हूँ। मैं तुम्हारे दादा का भी दादा हूँ। लक्ष्मी जब भगवान् से पूछती है कि 'आप अपने भक्तों को दर्शन क्यों नहीं देते ?' तब भगवान् कहते हैं कि 'वह दाता बदले में क्या लेना चाहता है, यह भी तो देखो।'

भगवान् को आप अपना मन, अपनी बुद्धि, अपना हृदय अर्पित करें।

भीष्मपितामह स्तुति करते हैं कि 'हे भगवन् ! केवल एक बार मुझसे कह दो कि मैं तुम्हारा हूँ।'

भक्ति ही मृत्यु को सुधारती है, सार्थक करती है। ज्ञानपर भरोसा मत रखो। आत्मा शरीर से अलग है, यह तो सभी जानते हैं; किन्तु इसका अनुभव सबको नहीं होता। दुःख होता है तब मन में देहाध्यास होता है। देहावसान के समय बीस करोड़ बिच्छुओं के डंक मारने जैसी वेदना होती है।

भक्ति मृत्यु को सुधारती है। कई बार ज्ञान मृत्यु को बिगाड़ता है।

भीष्मपितामह ज्ञान पर भरोसा नहीं रखते थे। वे भगवान् की शरण में गये। वे भगवान् से कहते हैं कि मैं आपकी शरण में आया हूँ। वे ऐसा नहीं कहते कि मैं ब्रह्मरूप हूँ। वे तो कहते हैं कि मैं आपका हूँ। आपकी शरण में आया हूँ। भगवान् उन्हें कुछ उलाहना देते हैं। वे कहते हैं कि मैं आपको अपना कैसे मानूँ ? आपने तो अर्जुन पर भी बाण चलाये हैं। अपने भक्त पर चलाये गये बाणों को मैं कैसे भूलूँ ?

भीष्मजी कहते हैं कि यह सारा जगत् जानता है कि पाण्डवों पर मेरा कितना प्रेम है। आप भी तो यह जानते ही हैं। युद्ध में मेरा शरीर कौरवों के पक्ष में था; किन्तु मन तो पाण्डवों के पक्ष में ही था। पाण्डवों पर मैं बाण तो चलाता था, पर मन से नहीं। चाह रहा था कि विजय पाण्डवों को ही मिले। 'जयोऽस्तु पाण्डुपुत्राणाम्' ऐसा बोलकर ही मैं बाण छोड़ता था।

श्री कृष्ण कहते हैं कि फिर भी आप शरीर से तो पाण्डवों के पक्ष में नहीं थे। आपने कौरवों के पक्ष में रहकर मेरे पाण्डवों के साथ युद्ध किया है। आप जब मन से पाण्डवों के साथ थे तो फिर तन से भी पाण्डवों के साथ क्यों नहीं रहे ?

भीष्मपितामह कहते हैं—'प्रभो ! मैं उस समय आपका दर्शन करना चाहता था। आप अर्जुन

के रथपर थे। मैंने सोचा कि यदि मैं पाण्डवों के पक्ष में रहूँगा तो सामने से आपके दर्शन कैसे कर सकूँगा ? आपका सतत दर्शन करते रहने के लिए मैं पाण्डवों के विरुद्ध कौरवों के पक्ष में जा मिला। पाण्डवों के पक्ष से लड़ता तो आपका दर्शन मैं इतनी अच्छी तरह नहीं कर पाता।'

भीष्मजी स्तुति करते हैं—

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकर गौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखेरतिरस्तु मेऽनवद्या

(श्रीमद्भा० १/६/३३)

'जिनका शरीर त्रिभुवन–सुन्दर और नीलतमाल जैसा नीलवर्ण है, जिनके तन पर सूर्यकिरण सा श्रेष्ठ पीताम्बर शोभित है और कमल के समान मुख पर उलझी हुई लटें बिखरी हुई हैं, ऐसे अर्जुनसखा श्रीकृष्ण में मेरी निष्कपट प्रीति हो।'

'पार्थसखे रतिर्मास्तु' ऐसे स्वरूपवान् पार्थ सारथि को प्रतिदिन अपने सम्मुख रखो। इन्द्रियरूपी घोड़ों को भगवान् को सौंप दो। शरीर रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं।

अपनी निष्काम बुद्धि और मन आपको अर्पित करता हूँ **'मतिरुपकल्पिता वितृष्णा'** (श्रीमद्भा०१/६/३२)। मन तो केवल भगवान को ही देने की वस्तु है। फिर भी जगत् में कोई स्त्री को मन देता है, तो कोई पुरुष को। भगवान् तो कहते हैं, तुम अपना धन आदि नहीं, किन्तु मन ही मुझे अर्पित कर दो। * * *

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः

भगवती श्रुति की आज्ञा है कि **'स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्'** अर्थात् सद्ग्रन्थों के नियमित नित्य अध्ययन और सद्विचारों के प्रवचन–कथन से प्रमाद नहीं करना चाहिये। महाभाष्यकार आचार्य पतञ्जलि ने विद्या को जिन चार प्रकारों से उपयुक्त होना बताया है, उनमें स्वाध्याय–काल को भी गिनाया है; यथा– ***'चतुर्भिःप्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति-आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति।'*** वस्तुतः स्वाध्याय सात्विक जीवन का सर्वोत्कृष्ट साधन है। किंतु स्वाध्याय के लिये ऐसे सद्ग्रन्थों का चयन होना चाहिये जिनके पावन विचारों से ऐहिक और पारलौकिक उभय उत्कर्ष की युगपत् प्रेरणा मिलती हो। ऐसे ग्रन्थ निःसंदिग्ध धर्मग्रन्थ ही होते हैं। दर्शन के ग्रन्थ विचार का परिष्कार कर विवेक प्रदान करते हैं। और धर्मशास्त्र उन्हें व्यावहारिक रूप देकर चरितार्थ करते हैं। अतः स्वाध्याय के लिये दर्शन और धर्मशास्त्र के ग्रन्थों का चयन समीचीन होता है। उनमें एक तात्विक और दूसरा व्यावहारिक शास्त्र होता है। हम दोनों को 'धर्मग्रन्थ' मानते हैं। इतिहास (रामायण और महाभारत) तथा पुराण धर्मग्रन्थों की निदर्शनात्मक व्याख्या करते हैं, अतएव वे भी धर्म के व्याख्याग्रन्थ हैं। इन सबका नियमित नित्य अध्ययन–स्वाध्याय करना चाहिये। इसी अभिप्राय से कहा गया है—**'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः।'**

सात्विक बनें

मन में कभी बुरे विचार नहीं लाने चाहिये, साथ ही वाणी से भी किसी बुरे शब्द का उच्चारण नहीं करना चाहिये। अश्लील, असत्य, अहितकर, व्यर्थ, अप्रिय, अपमानजनक, क्रोधभरी, दर्पपूर्ण, नास्तिकता का समर्थन करने वाली, भय और अभिमान से भरी वाणी कभी नहीं बोलनी चाहिये। ऐसी वाणी का उच्चारण करने से वहाँ का वायुमण्डल दूषित होता है। जिसको लक्ष्यकर ऐसी वाणी बोली जाती है, उस पर तो बुरा असर होता ही है, जहाँ तक वह ध्वनि जाती है, वहाँ तक के प्राणियों के मनों पर भी वह बहुत बुरा प्रभाव डालती है। जैसे शूरता की वाणी से मनुष्य में शूरता आती है, वैसे ही कायरों की भयभरी वाणी लोगों को कायर बना देती है। रणवाद्य और चारणों की जोशीली कविताओं और संतों की वैराग्य की वाणियों का अद्‌भुत प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जाता है।

इसी प्रकार शरीर से—किसी भी इन्द्रिय से—ऐसी कोई चेष्टा नहीं करनी चाहिये जो वायु मण्डल को दूषित करने वाली हो। सारांश यह कि मन को सदा शुद्ध संकल्पों और सत्—विचारों से भरे रखो, वाणी के द्वारा सदा सत्य, हितकर, मधुर और उत्तम वचन बोलो और शरीर से सर्वदा सर्वथा उत्तम क्रिया करो। इसी में अपना और जगत् का हित है। इसी प्रकार जहाँ ऐसे शुद्ध मन, वाणी और शरीर वाले सज्जन महानुभाव रहते हों, उन्हीं के समीप रहो और उन्हीं का संग करो। न स्वयं बुरा वायुमण्डल पैदा करो और न बुरे वायुमण्डल में निवास ही करो।

जो अपने मन में वैर की भावना रखता है, वह जगत् में अपने वैरी उत्पन्न करता है। जो प्रेम के संकल्प करता है, वह प्रेमियों की संख्या बढ़ाता है। जो भोगों में मन लगाता है—भोगों में रचा—बचा रहता है, वह लोगों में भोगासक्ति बढ़ाता है; जिसके मन में शूरता है, वह शूरता का वातावरण उत्पन्न करता है; जो कायर है, वह कायरता फैलाता है; जो भक्त है, वह भक्ति का प्रसार करता है; जो अभक्त है वह नास्तिकता फैलाता है; जो भय से काँपता है वह आसपास भय का विस्तार करता है; जो निर्भय रहता है वह सबको निर्भय बनाता है; जो रात—दिन शोक, दुःख और विषाद में डूबा रहता है, वह सबको ये ही बीजें देता है और जो भगवान् में प्रेम करता है, वह भगवत् प्रेमियों की संख्या बढ़ाता है। अतएव सब विषयों को सर्वदा दूरकर केवल भगवत्प्रेम से ही हृदय को सर्वथा भर दो। कदाचित् ऐसा न कर सको तो मन में सदा सात्विक शुद्ध आदर्श विचारों का पोषण करो और उन्हीं को बढ़ाओ। ऐसा करने से तुम्हारे आस—पास का वायु मण्डल सात्विक बन जायेगा। सात्विक विचारों की क्रमशः वृद्धि होते रहने से तुम्हारी संकल्पशक्ति बढ़ जायेगी, फिर तुम अपने सद्‌विचारों को बहुत दूर तक—लोगों के हृदय की गहराई तक—पहुँचाकर सबको सात्विक बना सकोगे। तुम सुखी बनोगे और बिना किसी उपदेश आदेश के स्वभावतः ही जगत् के बहुत बड़े भाग को भी सुखी बना सकोगे।

वे सात्विक, आचरणीय, शुद्ध, सद्‌गुण ये हैं—अहिंसा, सत्य, शौच, दया, प्रेम, दान, क्षमा, संयम, त्याग, वैराग्य, निरभिमानता, एकान्तप्रियता, कोमलता, सरलता, नम्रता, सेवाभाव, सहिष्णुता, स्वधर्म में प्रेम एवं परधर्म के प्रति सम्मान, द्वेषहीनता, समता, सन्तोष, गुणग्राहकता, दोष—दृष्टि का अभाव, सुहृत्पन, ममता तथा अहंकार का अभाव, मान—बड़ाई की सर्वथा अनिच्छा, सर्वभूतहित और भगवत्परायणता इत्यादि।

बस, मन—वाणी—शरीर से निरन्तर सावधानी और लगन के साथ इन्हीं सब सद्‌गुणों और सत्य संकल्पों को बढ़ाते रहो। स्वयं तर जाओगे और असंख्य प्राणियों को तारने में सहायक होओगे। संसार भी तुम्हें भला कहेगा और परलोक भी तुम्हारा कल्याणमय होगा। —शिव शंकर

गायत्री की विशेषता

पं० केशीजी मिश्र

'गायत्री छन्दसामहम्' (गीता १०/३५)

"छन्दों में मैं गायत्री हूँ"—ऐसा भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं अपनी विभूतियों के वर्णन में अर्जुन से कहा है। गायत्री शब्द अनेकार्थक है। गायत्री एक प्रकार के छन्द का नाम है और गायत्री एक मन्त्र—विशेष का नाम है। व्युत्पत्ति के अनुसार—**'गातारं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन सोच्यते।'** अर्थात् जिससे गाने वाले का त्राण होता है, उसे गायत्री कहा जाता है। इसी अर्थ में श्रीमद्देवी भागवत में कहा गया है कि—

न गायत्र्याः परो धर्मः न गायत्र्याः परं तपः।
न गायत्र्याः समो देवो न गायत्र्याः परो मनुः।।

अर्थात् गायत्री से बढ़कर न कोई धर्म और न कोई तप है। गायत्री के समान न कोई देवता और न गायत्री से बढ़कर कोई मन्त्र ही है।

यह मन्त्र गायत्री छन्द में है, जिसमें तीन पद होते हैं। प्रत्येक पद आठ-आठ वर्णों का होता है। गायत्रीमन्त्र की इतनी अधिक महिमा है कि इसे वेदमाता या विद्या की—ज्ञान—विज्ञान की जननी कहा जाता है। इसे मन्त्रराज या मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसी महिमा और श्रेष्ठता के कारण भारतीय ऋषियों ने इसे द्विजों—ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्यों के लिये अनिवार्य रूप से नित्य जपनीय माना था और यज्ञोपवीत के साथ इसका अविच्छेद्य सम्बन्ध स्थापित किया था। प्रतिदिन तीनों समय इसका ध्यान और जप अनिवार्य ठहराया गया।

पूर्वाह्न में गायत्री, ऋग्वेदमय है और सृष्टिकाल में ब्रह्मा भी ऋग्वेदमय माने गये हैं। ऋग्वेद में रजोगुण की प्रधानता है। इसका वर्ण (रंग) जपाकुसुम के समान बताया है। मध्याह्नकाल में गायत्री मन्त्र यजुर्वेद स्वरूप सुवर्ण रंग का सत्वगुण—प्रधान माना गया; क्योंकि इससे विश्व का पालन—पोषण होता है। अपराह्न में गायत्रीमन्त्र सामवेदमय है। सामवेद को तमोगुण—प्रधान माना गया है और संहार—काल में रुद्र को सामवेद—स्वरूप माना गया है। यही कारण है कि त्रिकाल—सन्ध्या में गायत्री मन्त्र का ध्यान क्रमशः ब्रह्माणी, वैष्णवी और रुद्राणी—रूप की किशोरी, युवती और प्रौढ़ा (किंवा वृद्धारूप) में किया जाता है। दूसरे शब्दों में, सृष्टि, संवर्धन, संहार—ये त्रिविध कर्म गायत्री मन्त्र में सन्निहित अपार शक्ति के बल पर होते हैं।

वेदों में अनेक गुप्त एवं प्रकट गायत्रियाँ हैं, पर सौम्य गायत्री के विशेष साक्षात्कर्ता हैं—विश्वामित्र ऋषि जिनका अर्थ है विश्व के मित्र या लोकहितैषी, लोक—कल्याणकर्ता। विश्वामित्र ने इसी मन्त्र के बल पर ही क्षत्रिय होते हुए भी ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया था और इतनी शक्ति

उपार्जित की थी कि वे स्वयं सृष्टि करने में समर्थ हो गये थे। अतएव गायत्रीमन्त्र की सम्यक् उपासना से सृष्टि का कल्याण सम्भव है, जन–जन का उत्कर्ष सम्भव है, विश्व में शान्ति एवं सुव्यवस्था सम्भव है। प्राणियों में सद्भावना की वृद्धि हो सकती है। इस पृथ्वी पर शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। गायत्री की महिमा अद्वितीय है।

यहाँ मुख्यतः इसके सरलार्थ बताने की चेष्टा की जायगी, जिससे इस मन्त्र के प्रति हमारी अभिरुचि बढ़े, आत्मीयता आवे और सम्यक्–रूपेण हमारी धी प्रणोदित हो सके जिससे इस परमाणु–युग में भी विश्व में शान्ति बनी रह सके, प्रजा का तन–धन सुरक्षित रह सके। गायत्री में सद्भावना बढ़ाने वाली बुद्धि को प्रेरणा देने की अपूर्व शक्ति है।

यह द्वि–द्वादश अक्षरवाला मन्त्र गायत्री छन्द में है–**'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।'** इसका अन्वय मुख्यतः दो प्रकार से किया जाता है और उसी के अनुकूल अर्थ किया जाता है। प्रथम अन्वय है–**तत्सवितुः देवस्य वरेण्यं भगः धीमहि।** तत्सवितुः (तस्य सवितुः) देवस्य (उस सविता देव के) वरेण्यं भर्गः (कमनीय तेज का) धीमहि (हम ध्यान करते हैं)। व्युत्पत्ति के अनुसार 'सविता' शब्द का अर्थ है जन्म देने वाला। वेद में 'सविता' शब्द सूर्य के लिये आया है और अखिल विश्व के जन्मदाता के लिये एवं ब्रह्मा अथवा परमपिता के लिये भी अर्थात् सृष्टिकर्ता परमेश्वर के लिये भी। सौर–परिवार में पृथ्वी–प्रभृति ग्रहों, उपग्रहों के लिये सूर्य का वही स्थान है जो अखण्ड त्रिलोकी के लिये सृष्टि कर्ता परमेश्वर का है।

सूर्य जन्मदाता है। पृथ्वी और चन्द्रमा के। सूर्य ने ही अपनी आकर्षण–शक्ति के बल पर पृथ्वी को अपने स्थान पर बनाये रखा है। अपनी आकर्षण शक्ति के आधार पर सूर्य पृथ्वी को अपने चतुर्दिक् प्रदक्षिणा करने को बाध्य करते हैं। सूर्य ही पृथ्वी को शस्यश्यामला बनाते हैं, जीवजन्तुओं से परिपूर्ण रखते हैं। दूसरे शब्दों में इस पृथ्वी पर सृष्टि के मुख्य कारण सूर्य ही है। इसलिये वेदों में सूर्य को प्रत्यक्ष ब्रह्मा कहा है, सविता कहा है, जन्मदाता ही नहीं, धर्ता और संहरता भी कहा गया है। सूर्य ही द्वादश आदित्य हैं। सूर्य ही सांख्यमत के चौबीस तत्वों के बीज हैं; मानो गायत्री मन्त्र के अक्षरों में द्वादश आदित्य द्विगुणित होकर हैं। गायत्री मन्त्र का प्रत्येक अक्षर एक–एक तत्त्व का बीज–स्वरूप है।

सविता भर्गयुक्त है। भर्ग द्विविध है, कल्याणात्मक और संहारात्मक–कमनीय तथा वर्जनीय। जो भद्र है, शिव है, जो कल्याणप्रद है वही कमनीय है, वरेण्य है। जो अभद्र है, अशिव है, संहारात्मक है वही वर्जनीय है, त्याज्य है।

'भर्गः' शब्द भ्रस्ज् धातु से बना है और 'भर्ज' धातु से भी बनता है। 'भर्ज' धातु से बनने पर अर्थ होगा–भून डालने वाला तेज, जला डालने वाला तेज।

साधारण शक्ति भी दुधारी तलवार की तरह काम करती है, वह लाभ पहुँचाती है और हानि भी। सूर्य में सृष्टि, संरक्षण और संवर्धन करने वाला तेज है और संहार करने वाला भी। जल–शोषण कर वृष्टि कराने वाला तेज है तथा लू से सबको झुलस देने वाला तेज भी। हमारे लिये वरेण्य तेज वही है, जो हमारा कल्याण करे, जो हमारी सम्पत्तियों की तथा स्वास्थ्य की वृद्धि करे, जो हममें सात्विक दैवी तेज का उत्कर्ष करे, जो तेज हमारे अन्तःस्थ षट्रिपुओं का, हमारी आसुरी प्रवृत्ति का संहार करे। अतः हम वरेण्य भर्ग का आवाहन करते हैं, वरेण्य भर्ग का ही ध्यान करते हैं, वरेण्य भर्ग की ही अवधारणा अपने में चाहते हैं।

'देवस्य' अर्थात् देवका, असुर का नहीं। तेज दोनों में होते हैं, देव में और असुर में भी। देवका तेज है ज्योतित करने वाला, प्रकाशित करने वाला, अव्यक्त को व्यक्त करने वाला, संकुचित को प्रस्फुटित करने वाला। वेद के अनुसार देवत्व और शक्तितत्व पर्यायवाचक हैं। असुर का तेज है उच्छृंखलता फैलाने वाला, अव्यवस्था फैलाने वाला, अन्धकार फैलाने वाला, अंधेर मचाने वाला, अशान्ति कराने वाला। अतएव हम सच्चिदानन्द देव के तेज का आवाहन करते हैं ताकि हममें ज्ञान और आनन्द की वृद्धि हो। आसुरी तेज से हम सदैव दूर ही रहने का प्रयत्न करते हैं।

'देवस्य' अर्थात् देव का, असुर का नहीं। तेज दोनों में होते हैं, देव में और असुर में भी। देव का तेज है ज्योतित करने वाला, प्रकाशित करने वाला, अव्यक्त को व्यक्त करने वाला, संकुचित को प्रस्फुटित करने वाला। वेद के अनुसार देवत्व और शक्तित्व पर्यायवाचक हैं। असुर का तेज है उच्छृंखलता फैलाने वाला, अव्यवस्था फैलाने वाला, अन्धकार फैलाने वाला, अंधेर मचाने वाला, अपशान्ति कराने वाला। अतएव हम सच्चिदानन्द देव के तेज का आवाहन करते हैं। ताकि हममें ज्ञान और आनन्द की वृद्धि हो। आसुरी तेज से हम सदैव दूर ही रहने का प्रयत्न करते हैं।

'धीमहि' बहुवचनान्त है; अर्थ है 'हम ध्यान करते हैं'। व्याकरण 'अपने' लिये एक वचन के स्थान पर बहुवचन के प्रयोग के लिये राजी है, अनुमति देता है। इसलिये 'ध्यान करता हूँ' के स्थान पर 'ध्यान करते हैं' शुद्ध माना जाता है। ध्यान (धी आ (हा) न) का अर्थ है धीमें लाना, प्रवेश कराना, स्थान ग्रहण कराना।

अतएव **'तत्सवितुःदेवस्य वरेण्यं भर्गः धीमहि'** का सरलार्थ हुआ–उस सविता देवता के कमनीय (वांछनीय) तेज का हम ध्यान करते हैं। 'सविता देवता' पृथ्वी और पृथ्वी पर के लता–द्रुम और जीव–जन्तुओं एवं जड़–चेतन के उत्पन्न करने वाले सूर्य के अर्थ में और सूर्य के सृष्टा तथा नियन्ता एवं जगत् सृष्टा परमदेव के अर्थ में भी प्रयुक्त माना जा सकता है।

इतने अंश का अन्वय इस प्रकार भी किया जा सकता है—**'सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि'** अर्थात् सविता देवता के उस वरेण्य भर्ग का हम ध्यान करते हैं। इस अन्वय में 'तत्' शब्द 'भर्गः' का विशेषण बन जाता है। **'तत्सवितुः'** एक समस्त पद नहीं रह जाता है। दोनों अन्वयों में सिर्फ 'तत्' शब्द के स्थान के कारण अर्थों में अन्तर आ जाता है। प्रथम अन्वय में **'तस्य सवितुः'** के स्थान के कारण अर्थों में अन्तर आ जाता है। प्रथम अन्वय में **'तत्'**, **'सवितुः'** से सम्बद्ध हो जाता है। दूसरे अन्वय में **'तत्'**, **'वरेण्यं भर्गः'** का विशेषण बन जाता है और द्वितीया विभक्ति का (नपुंसक लिंग का) एक वचन रूप ग्रहण कर लेता है। दूसरे अन्वय का अर्थ विशेष काव्यात्मक हो जाता है और मन्त्र के तीसरे पद **'यो नः धियः प्रचोदयात्'** के यः (वरेण्यं भर्गः) के साथ अन्वित हो जाता है।

तृतीय पद का सरलार्थ है 'यः' (जो सविता देवता का वरेण्य भर्ग) 'नः' (हमारी) 'धियः' (ब्रह्मज्ञान हृदयंगम करने वाली बुद्धियों को) प्रचोदयात् (प्रेरित करे)।

'धी' से अभिप्राय उस बुद्धि से है जो इहलौकिक सफलता के साथ–साथ पारलौकिक सिद्धि भी प्राप्त करा दे, ब्रह्मोपलब्धि में सहायिका हो, अर्थात् चारों पुरुषार्थों (धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष) की प्राप्ति करा दे। धीमें आना ही ध्यान है। हम वरेण्य भर्ग का ध्यान करते हैं, आह्वान करते हैं कि धीमें आकर स्थान ग्रहण कर उसे प्रेरित करे, जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रचोदित करे। हमारे मन को मोक्ष की ओर ले चले, ईप्सित दिशा में ले चले, शिवमार्ग पर ले चले, उस ओर ले चले जहाँ हमारा कल्याण हो, वहाँ ले चले जहाँ से पुनः इस संसार में नहीं आना पड़े।

वेद ने पृथ्वी के प्रसंग में सूर्य को सविता निश्चित रूप से माना है और मुक्त कण्ठ से उद्घोष किया है कि—

'सूर्यः आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

अर्थात् सूर्य स्थावर और जंगम दोनों के आत्मा हैं। अतः ऋषियों ने सूर्यमण्डलमध्यवर्ती परमात्मा का, कोटि–कोटि सूर्यों के सविता का, सृष्टि–पालन–संहार–कर्त्ता का, नियन्त्रण, प्रेरण, संचालन–कर्ता का, सर्वोपरि सविता का दर्शन किया और गायत्रीमन्त्र द्वारा प्रतिदिन उनके वरेण्य भर्ग का नियमित रूप से ध्यान कर अनुपम लाभ उठाया। हमें उनके पदचिन्हों पर चलकर गायत्री की शास्त्र निर्दिष्ट उपासना करनी चाहिये।

गायत्री–ध्यानादि के मतभेदों को दूर करने तथा तत्सम्बन्धी पूरी जानकारी के लिये आचार्य शंकररचित गायत्र्यनुष्ठानपद्धति, देवीभागवत ६–१२, मनु, योगियाज्ञवल्क्य, काण्वादि २० मुख्य स्मृतियाँ, गायत्रीतन्त्र, पंचाग, संध्याभाष्यसमुच्चय, शारदातिलकादि तन्त्रों को अवश्य पढ़ना चाहिये।

* * *

विषय-निन्दा

(विवेक चूडामणि से)

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्ण सर्पविषादपि।
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम्।।

दोष में विषय काले सर्प के विष से भी अधिक तीव्र है, क्योंकि विष तो खाने वाले को ही मारता है, परन्तु विषय तो आँख से देखने वाले को भी नहीं छोड़ते।

❖❖❖ ❖❖❖ ❖❖❖

शब्दादिभिः पंचभिरेव पंच
पंचत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः।
कुरंगमातंगपतंगमीन–
भृंगा नरः पंचभिरंचितः किम्।।

अपने–अपने स्वभाव के अनुसार शब्दादि पाँच विषयों में से केवल एक–एक से बंधे हुए हरिण, हाथी, पतंग, मछली और भौंरे मृत्यु को प्राप्त होते हैं, फिर इन पाँचों से जकड़ा हुआ मनुष्य कैसे बच सकता है।

❖❖❖ ❖❖❖ ❖❖❖

मोक्षस्य कांक्षा यदि वै तवास्ति
त्यजातिदूराद्विषयान् विषं यथा।
पीयूषवत्तोषदयाक्षमार्जव–
प्रशान्तिदान्तीर्भज नित्यमादरात्।।

यदि तुझे मोक्ष की इच्छा है तो विषयों को विष के समान दूर ही से त्याग दे और सन्तोष, दया, क्षमा, सरलता, शम और दम का अमृत के समान नित्य आदर पूर्वक सेवन कर।

❖❖❖ ❖❖❖ ❖❖❖

विषयाख्यग्रहो येन सुविरक्त्यसिना हतः।
स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूहवर्जितः।।

जिसने वैराग्य रूपी खड्ग से विषयैषणारूपी ग्राह को मार दिया है, वही निर्विघ्न संसार–समुद्र के उस पार जा सकता है।

SIDDHYOG Regd. No. L.Ag. 008 MAY 2004

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एटमादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री उमा शंकर और ब्रज
B-45 बुलाकी पुरम
शाहगंज अन्तर्राष्ट्रीय रोड
आगरा.
282007

दृश्यस्याग्रहणं कथं नु घटते देहात्मना तिष्ठतो, बाह्यार्थानुभवप्रसक्तमनसस्तत्तत्क्रियां कुर्वतः।
संन्यस्ताखिलधर्मकर्माविषयैर्नित्यात्मनिष्ठापरैस्तत्त्वज्ञैः करणीयमात्मनि सदानन्देच्छुभिर्यत्नतः।

(विवेक चूड़ामणि/३४१)

जो लोग देहात्म–बुद्धि से स्थित रहकर बाह्य पदार्थों की मन में आसक्ति रखकर उन्हीं के लिए निरन्तर काम में लगे रहते हैं, उनको दृश्य की अप्रतीति कैसे हो सकती है ? इसलिए नित्यानन्द के इच्छुक तत्वज्ञानी को चाहिये कि वह समस्त धर्म, कर्म एवं विषयों को त्यागकर निरन्तर आत्मनिष्ठा में तत्पर हो अपने आत्मा में प्रतीत होने वाले इस दृश्य–प्रपंच का प्रयत्नपूर्वक बाध करे।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बरसंदकलाँ, लाजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एटमादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र.(डॉ.) दयालाल शर्मा